







# समर्थ-जीवन-दर्शन

पंडित म० सु० कुलकर्णी

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

२६ ए, बम्बेसोक जवाहर नगर दिल्ली-६

बिबी बेगम नई मडक दिल्ली

प्रथम संस्करण

दिसम्बर १९६३

मूल्य

चार रुपये

© गीता

## सादर समर्पण



परमहंस परिवाराजगदाचार्य श्रीधर स्वामी

उन सभी महामार्गों के कारण। म दिग्गति धर्म, राष्ट्र और समाज के  
विभिन्न धर्मों को रोपित कर हिंदू समाज को एवारीयन  
में सेवा सांस्कृतिक विज्ञान प्रौद्योगिकी में परिवर्तित करके  
भारतीय धर्मों के स्तर का ऊपर उठाना। प्रतीक  
एव में वरु विभिन्न सेवा धर्मों के साथ  
अपवित्र करने हुए संतोष की  
प्राप्ति होगी है।



## आशीर्वाद और संदेश

चमत्कार की सामर्थ्य को समर्थनी ने जाना था। इसीलिए उस शक्ति का उन्होंने पाया। अपने शिष्यों के जीवन में उस उँदेल दिया जिसमें धर्म के अर्थ को वे पहचान सके; आनन्द के साम्राज्य का निर्माण कर सकें। परिणामस्वरूप मंगल-बाघ से सारा प्रांत गुज उठा। संताप, शक्ति, शक्ति और भक्ति की सामर्थ्य से उन्होंने समूचे राष्ट्र का हित साधा। समाज को बेमन-मनपन बनाया। हम भी उसी घर, बेमन के सामर्थ्य से विभूषित हो अगिल बिरह में धमक कर अड़ा पहचानें। संपूर्ण जगत् ने आनन्द के साम्राज्य का निर्माण करें। इसी शक्ति का पाने के लिए मैं समर्थनी से प्रार्थना करता हूँ और चाहता हूँ कि आप भी प्रार्थी बनें। मेरी यह मंगल कामना माना आशीर्वाद ही है।

आप जानते हैं कि अनेक युगदुष्टों के पल पर भारतीयों की अनंत कठिनाईएँ एक दूसरे में गुंथकर पसी मतभूत अतीत बनी हैं कि वह ताड़ने पर भी नहीं टूट सकेंगे। देवी सामर्थ्य से ही यह अतीत मतभूत बनी रही। यदि हम पारंपार्य दृष्टि की हों तो हों मिलान की अन्धा देवी सामर्थ्य को पाएंगे तो निश्चय ही भारतीयों की कृति में कर पड़े लक्षण।

आशीर्वादी बनना है,  
जान अनागत पता है।



सो आचरण का प्रधानता दकर विचारों के बन्धन से मुक्त हो अपने आपका मानने की कोशिश कीजिए । कहने-सुनने का अपेक्षा इस आचरण-प्रधान बनकर अपने समय से पुनः एक बार संपूर्ण विश्व में चमक उठें—यही मैं चाहता हूँ और आशीर्वाद भी देता हूँ ।

—श्रीधर

भूमिका

का मार्गनिर्देशन करते हैं। इन्हीं दूसरे प्रकार के संतों में समर्थ-स्वामी रामदास का स्थान है। समर्थजी की भावियों में जहाँ हमें बहुत ध्यात्म-तत्त्व चिन्तन साधना भक्ति सृष्टि-कर्म सिद्धास्त-निरूपण ईश्वर-जगत् और जीव माया का विवेचन मिलता है वही दूसरी ओर राजनीति निरूपण काव्यकला योगधर्म निरूपण चतुरों और मूर्खों के मझण लोगों के स्वभाव सतनधिया अभागों और माम्बानों के मझण घाटि विषयों पर उनका विचार भी प्राप्त होते हैं। इन विषयों को रंगने से तो वही सजता है कि ये परपरामर्श बंधी बंधाई परिपाटी की चर्चा के प्रसंग है। परन्तु जब कोई व्यक्ति इन प्रसंगों को पढ़कर समर्थजी के अनुभव और विचारों से प्रभावित होता है तो उसे पता चलता है कि वास्तव में उन्होंने इन सभी विषयों को स्वानुभव में विचारों और देखा है और उनके अन्तर्गत बड़ा वास्तविक विवेचन मिलता है। चाहे राष्ट्रीय विषय हो चाहे सामाजिक जीवन का विषय हो। समर्थजी का विरलेषण और विभिन्न विषयों का स्पष्टीकरण इतना स्वच्छ और स्पष्ट है कि सीधा हमारे मन और बुद्धि पर प्रभाव डालता है।

समर्थ स्वामी रामदास प्रसिद्ध महापुरुष महाराज शिवाजी के गुरु थे और सामान्यतः हम जितना सूत्रपति शिवाजी और उनकी महानता को जानते हैं उतना स्वामीजी के गौरव को नहीं। परन्तु जो वास्तविकता से प्रभावित है उस विहित होगा कि महाराज शिवाजी की उनका असमी राष्ट्रनता का रूप देने वाले और इन प्रकार राष्ट्रगुरु समर्थ स्वामी रामदास ही हैं। उन्होंने महाराज शिवाजी के भीतर उत्कृष्ट बीरता धारण स्वाम मार्ग बलिदान आदि महान गुणों को आवृण किया। अनेक माँ समर्थ और गजगो के प्रसंग पर तथा मध्य और बुद्धि के साथ। समर्थजी ने महाराज शिवाजी का मार्ग दिशाया और उनका महत्त्व को बुद्धि प्रदान की। यदि समर्थजी न होते तो सावर शिवाजी का चरित्र इनसे कुछ भिन्न होगा और इस प्रकार का जा सकता है कि यदि शिवाजी न होते तो समर्थजी का पर विद्यावान व्यक्ति का अभाव गटवता और सावर के अवन उल्लस प्रयाग और समगामदिक भवना की पुत्रा का चिन्तित न कर सकते। दूसरे शब्दों में हम यह कहें

है कि राष्ट्राध्यक्ष गिबानी का व्यक्तिगत और व्यक्तिगत समर्थन म्यामी समझौते के बिना और समर्थन का व्यक्तिगत और व्यक्तिगत समर्थन म्यामी समझौते के बिना घपरा रहता। वे दोनों दुष्प्रकार और घपरा के समान हैं जिनके एकर होने पर बिना निश्चय है जैसा कि गीता के अन्तर्गत संभव का कारण है कि

“यत्र योगेश्वरो हृत्को तत्र पार्शो धनुधरः ।

तत्र धी बिजयोभूति ध्रुवा शोतिर्मतिमथ ॥

ऐसी रचना में समर्थन का योग्य और समर्थन का प्रचार देश के कोन-काने में आवश्यक है। महाराज गिबानी का व्यक्तिगत समर्थन ही हमें राष्ट्र की रक्षा और उन्नति करने के लिए प्रबल प्रेरणा देता है परन्तु यदि हम उनके साथ-साथ उनको प्रेरणा देने वाले समर्थन के व्यक्तिगत और पार्श्व से अनभिज्ञ रहते हैं तो वास्तविक रूप से बिजय है। अतएव उनके व्यक्तिगत और उनको बायीं का समर्थन राष्ट्र में प्रचार करने के लिए उसका राष्ट्रवादी में हुना आवश्यक है जिसमें हमारा समर्थन राष्ट्र राष्ट्रवादी गिबानी तथा राष्ट्रवाद समर्थन के बायीं और बिजयों से धर्मीय शक्ति तब प्रबल बनने का प्रारंभ कर सके।

महत्त्व है। श्री कुलकर्णीजी ने राष्ट्रसूत्र के समर्थ-जीवन चरित्र को राष्ट्र-नाया में प्रबलित करके समस्त राष्ट्र के चरित्र-निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता-प्राप्ति की दिशा में एक अभिर्गमनीय प्रयास किया है। जोर मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ का देश के प्रत्येक भाग में समुचित स्वागत होगा। श्री कुलकर्णीजी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। महत्त्व हम माना करते हैं कि उनकी लेखनी में राष्ट्र-नाया से धीरे-धीरे जनक राष्ट्रीय महत्त्व का संघ-प्रकट होगा।

पूना

० ८ १० १९६२

प्रमोद मिश्र

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

पूना विश्वविद्यालय

पूना-७



विचारों से परिचित हों जो जीवन के संबन्ध में काम आ सकत हैं। जहाँ तक मरा क्या है समयजी से सम्बन्धित उन समय विचारों के दोहन का मुझरे निचोड़ में समुपस्थित कर रहा है जिससे समयजी के जीवन परिचय और अनेकविध कार्य का परिचय समझाया हो सके। भाषा और ईप के बारे में एक अहिंसी प्रान्त का हिंदी लेखक मता क्या कुछ कह सकता है? विषय का यथोचित दर्शन ही मुख्य सूचिका मान घवन जीवन को समर्थ बनाने की प्रेरणा 'समर्थ-जीवन-दर्शन' के द्वारा प्राप्त कर सकेंगे यह उत्कट धर्मिणा व्यक्त करके उप के लिए समा वाचना का प्रार्थी है।

चरित्र ग्रंथ तो सिद्ध हुआ। परन्तु उमर नामाभिधान ने मन में बड़ी गड़बड़ी उत्पन्न कर दी। क्योंकि भारतवर्ष के क्यातनाम देशमन्त्र सगठन प्रचारक ठाबु-संत पुहुरो और समाज तथा राजनीति के क्षेत्र में पारंगत भी समयजी की भुरि भुरि प्रशंसा करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र का अधिकारी समयजी जीवन चरित्र में उच्च कोटि के गुण पाता है। जो कुछ सोम गण्डवृक्ष के स्वल्प में उन्हें देखते हैं कुछ सोम उन्हें धमकाने मान भक्ति भाव से उनका शार्थिक स्वागत करते हैं। कुछ सोम उन्हें मुगुण्य समझ घपना मस्तक उनका चरणों में मुका देते हैं। कुछ लोग शार्थिक के रूप में उन्हें पूजते हैं और कुछ सोम संबठनासास्त्र के कमाकार समझ उनका मोरघ गाते हैं। हिंमुत्पान के ही मूर्छो घपितु पाठ्यात्य दस के शार्थिक भी समयजी का जीवन चरित्र पढ़कर घभिभूत हो उठे हैं। प्रमाण रूप में अनेक विज्ञाना की सम्मतिघों दकर समयजी के आदर्श जीवन-चरित्र का पुष्ट किया जा सकता है। परन्तु मेरी दृष्टि से यह प्रयास व्यर्थ है। क्योंकि सर्वमाचारण पाठक इन प्रमाणों को पढ़कर जबल यही कल्पना कर सकते हैं कि समयजी का जीवन चरित्र धर्मीय है। बस्तुतः प्रत्येक पाठक जब "स जीवन-चरित्र" में घभिभूत हो उठगा तभी व प्रमाण उमर मत्स्य का ठाय प्रमाण बन सकेंगे। अम्यदा के प्रयास पुस्तक-वर्धन का कार्य ही कर सकेंगे। अतः समयजी के प्रति समाज की जो घडा है और जिस पुहुरो-जीवन के माध्यम से उर्भूति राजनीतिक सामाधिक और शार्थिक समस्याघों का मुन

भाषा है उसी के प्रमाणभूत 'समय-जीवन-दर्शन' यह तीर्थंकर मैन प्रथित उचित और सार्थक माना है जो हर किसी क्षत्र के व्यक्ति के जीवन में सामग्य भरन के लिए पुष्टि देय साबित हो सक। औचित्य और यथार्थ के दृष्टक हिन्दी भाषा भाषी हैं। जो भावगारमक ऐक्य साधन के हेतु पहिदी प्राठी को अपने साथ न जान में देन की ममत्त-नामना का अनुभव करते हैं व हा इस पुष्टि देय के पाल का यथोचित दर्शन करा सकते हैं।

समर्पत्री का जीवन चरित्र सभी पद वर्ण एक समय-प्रामितादियों के लिए अनुकरणीय और अनुसरणीय इसलिये है कि वे स्वयं अससारी रहकर संसार साधना करते रहे इतना हा नहीं अपितु संसार साधना की मयाप बिधि का बयान कराकर उस बिधि के अनुसार जीवन धारणा की उपासना में भागतीय समाज को उन्होंने प्रेरित किया। बृहस्प-जीवन को सब चाहत है फिर वे किसी पद या पंथ के मन्त्रक और दुःखक क्यों न हा। बृहस्प जीवन से ही हम सब काम और मांग इन चार परंपारों की साधना होती है—बृहस्प जीवन ही ब्राह्मण धर्मिक बंध्य और गृह इन चार गुण-कम-गत वर्णों की रचना दुःख बनाए रहता है—बृहस्प जीवन से ही ब्राह्मण्य बृहस्प कामप्रथम और मयाप इन चार धर्मों का बिधियुक्त पालन हाता है—बृहस्प धर्म से ही पद्विधियों को (काम शोध काम मोह मत्सर व इय) अपने धार्मिक बन उठे सम्माय को और मोहा का मकता है और उनमें जीवन में मग्न-मना नाई जानी है। इस जीवन-साधनाओं के सभी उपायों का चितन कर और उनकी उपपत्तजा का जान सर्वत्रिय बृहस्प जीवन का यथार्थ रूप समर्पत्री न दर्शाया। हमो से समर्पत्री का जीवन सबसे मिला धरुकर और द्विज बना है। समर्पत्री के इसी बृहस्प जीवन का अपने इच्छा गिच्छा एक मन्त्रों के द्वारा मुनभाषा जो बमटा के समाक में और धारणाधियों के धारणा के उरुद मना दा। बिजय स्यामाधिक हा मारी जनता समर्पत्री की धार धारविन हर्ष और समर्पत्री न भी जनता धरुद मन्त्रक कर पद साधना समाक-साधना और राग साधना में उरुद योय पादा। यही कारण



जिसे हिन्दु मित्र प्रदंग की विपरीत अवस्था में भी स्वतंत्र समर्पण बना गये ।

समयजी के इन्हीं भावों का उपासक होने के कारण मित्र का मध्यम शक्ति भावों की सूचना का मैं टास न सका । उन्हीं की उत्कट इच्छा के अनुसार मारायण (गमदास-समयजी) ने अपने जीवन का समर्पण कर दिया । समर्पण जीवन किसे कहते हैं समर्पण जीवन के योग कौन-कौन से हैं— इन बातों की खोजबीन में मरा । जो दर्शन मैंने पाया वह है समर्पण-जीवन ।

### अन्यथा

यह परम्परा हादिक है । हृदय ही इसे जानता है । जो हृदय की बात का टासन की कसा को अनुभूत होने के ताते मैं नहीं पा सका । इसीलिए उन अनुभवों को प्रत्यापन हादिक अन्यथा देता हूँ जिन्होंने समर्पण की सेवा की सामर्थ्य मुझ में भर दी ।

सबप्रथम डा० भावे इसलिये अन्यथा के पात्र हैं कि उन्होंने ही मुझे इस विद्या में मोड़ दिया । श्री रामरंज गाडगिस को समर्पण की महत्ता के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं । चित्रकार भी अन्यथा के पात्र हैं क्योंकि हृदय के भावों को चित्रों के द्वारा उन्होंने ही उभाया है । समर्पण की पुस्तक में जिन चित्रों का प्रकाश हुआ है वे चित्र श्री पल्लविन्दकर गुडजी द्वारा प्रेषित हुए हैं । जो उनकी कृपा से ब्यो के लिये गए हैं । अतः मैं 'जिसी भी लेखक मित्र को हम अतृप्त नहीं होतें' इस एकमात्र वाक्य में मेरे अनुभवों को जिन्होंने प्रकृत किया है वे मेरे मित्र नेचमस पब्लिशिंग हाउस के मालिक हैं । दरप्रसल मैं उनसे विनम्र परिचित नहीं था । इस एक वाक्य में ही हम दोनों को एकत्रित कर दिया जिससे मैं पुस्तक के कम में प्राप्त सामने रचने की कोशिश कर सका । मेरे लिए ये तब ही अन्यथा के पात्र बने रहेंगे ।

श्रीपर स्वामी का आशीर्वाद उनकी अपनी अनुभवों को प्रकृत का फल है ।

स्वामीजी की साधना चैतन्यप्राप्ती होने के कारण हम स्वयं धर्म्य बनाता है। इस बात में किम प्रचार धर्म्यवाद है? घोषा भी तो नहीं देया। मसब मया अपनी बानी धर्म्यवा लक्ष्मी के प्रतिरिक्त क्या कुछ द मयता है इमीनिण हूय वह उठता है—धर्म्यवाद।

धर्म्य डॉ० भगीरथजी मिश्र धर्म्यवा हिन्दी विभाग पुना बिन्दुबिन्दा लय का मैं धामारी हूँ। मुझे यह ज्ञात है कि डॉक्टर साहब धर्म्य वैदिक कायों में इतन कामरत हैं कि किमा धर्म्य काम के लिए बड़ा मुश्किल से वे समन्वीच मिनट भी नहीं दे पाते हैं। इस धर्म्यवा म जब मैं 'ममय-जीवन दर्शन' को भूमिका के लिए ले गया था उन्होंने बड़ी धार्मीयता से मय मयाज का दूर कर पुस्तक की ममय जानकारी प्राप्त कर भी धीरे धीरे धर्म्यवा लिया। इतना ही नहीं धर्म्यवा पुस्तक को ममय पढ़कर मप्लाह के नीतर ही भूमिका भी लिख ली।

ममय-जीवन-दर्शन के लिए किसी समर्थ पुरय की भूमिका मैं चाहता था। जीवन धीरे माहित्य के माय-माय धर्म्ययन तथा धर्म्ययन के धर्म्ययन धर्म का परिचय डॉक्टर साहब अपनी कार्य प्रणाली में दे चुके हैं। धर्म्य ममय की भूमिका के पाठ मयया पाठ है। धर्म्यवा भूमिका विषय ज्ञान का दृष्टि से भी धर्म्यवा उपादय होगी। मेरी कठिनाई दूर हुई धीरे धीरे हार्निक दक्षता भी लुप्त हुई धर्म्य डॉक्टर साहब का मैं धर्म्यवा लक्ष्मी हूँ। धर्म्ययन का बाय दूट जाने म पर की उभर्मनी न उभरकर धारण किया किमय पुष्पाय के लिए धर्म्यवा पा मया। धर्म्य उभर्मने भी मेरे लिए धर्म्यवा की पाठ बनी हैं।

१९८ नागावण देव

पुना २

१० जीवाय मन् ११ की

धर्म्यवा

म० तु० पुनरधर्म्य



## अनुक्रम

चरित्र-संघ का प्रथम	१
सद्गुरु बालक	६
योग-भाषना	१७
योग-भाषना का पत्र	२६
कर्म-भाषना के पत्र पर	३३
कर्म-भाषना	४८
कर्म-भाषना शत्रु	५७
पुस्तकालय की सुविधा	७६
राज्य-भाषना	८०
राज्य-भाषना नीति	१०८
धर्म-भाषना	११२
समय-सहाय	११३
समाचार के समाचार	१२६-२१६





शिवजी का चित्र



## चरित्र-ग्रंथ का प्रयास

इतिहास के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होगा कि जीवन परिचय लिखने की परम्परा प्रायुक्तिक युग तक प्रचलित नहीं थी। तथा पुराणों में देवी-देवताओं की मीलाओं का दान हम अबस्य पात है परन्तु उनसे न देवी-देवताओं क चरित्रों का संपूण ज्ञान हमें हुना है और न उन भगवत् भक्तों क चरित्रों की मूल्य मित्ती है जिहान कथा-पुराण लिने है। धार्मिक ग्रंथों म धर्मोक्तिता धद् मुक्तता और समस्तार्युक्त बधाएँ मस ही हों परन्तु यह सत्य है कि भारतीय विचारों की शृंगला उनके द्वारा भा मविष्ट गति म चली धाई है। रघुसंज धयबा ह्य चरित धादि चरित्र-ग्रंथों से ज्ञात होता है कि मध्य युग में राजा महाराजाओं को भगवान वा धन वा प्रतिनिधि समककर उनके चरित्रा का चित्रण मय धयबा वय क रूप म किया गया वा। इन चरित्र ग्रंथों ध यही स्पष्ट हाता है कि राजा-महाराजा प्रजा क हित म दन से और प्रजा की राज-निष्ट थी।

गो हमारा पूव इतिहास मापुसां, संतों महानुरवा और लोच मनाओं के चरित्रों से बचिन रहा। यही कारण है कि सुकार की गतिविधि के माय धान बदन में उन महाभागों क चरित्रा से गमु पित मागगात्र म पाने के कारण हमारा सामूहिक जीवन रच-रच-कर धागे बढ़ता रहा। फलस्वरूप वाणिज्य, तुलसीदास ज्ञाने-



द्वार आदि महाभागों के समग्र जीवन चरित्रों से हम गतिशील मायदशन न पा सके। यह सत्य है कि कही-सुनी और कुछ देखी पड़ी बातों के आधार पर भारतीय जीवन अपने संस्कारों के अनुसार निर्मित होता रहा, और समय-असमय उसमें उतार चढ़ाव भी दीख पड़ा। परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि भारतीय जीवन बुद्ध में कोई विद्येय परिवर्तन न हो सका उसके भरण-पोषण में परिवर्तन भसे ही हुआ हो।

हमारे सद्भाग्य से समर्थ रामदासजी के जीवनकाल में यह व्यवस्था नहीं रही। समर्थजी ने जो रचनाएँ की हैं उनसे और फिर उनके शिष्यों द्वारा लिखित समर्थ विषयक टिप्पणियों से समर्थजी का संपूर्ण जीवन-चरित्र आज हमारे सामने है। शिष्यों द्वारा लिखित सात चरित्र-ग्रंथों एवं टिप्पणियों में हेर-फेर भसे ही दिखाई देता हो परन्तु मूल जीवन-विषयक घाटकों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण मतभेद नहीं है। शिवाजी और समर्थजी का साक्षात्कार कब और कैसे हुआ? समर्थजी ने शिष्यों महर्षियों और मठों की स्थापना क्योंकर, कहाँ-कहाँ और कैसे की? आदि अनेक बातों में एक-वितक कर चरित्र के अनेक भाष्यकारों ने समर्थ चरित्र का आधार विवेचन किया है जो लगभग बीस प्राथमिक ग्रंथों में पाया जाता है। मक्खी लेकर श्रीकृष्णदेव ने तो पचास वर्ष समर्थ चरित्र और वार्त्त के अनुसंधान में लक्ष्मण कर समर्थजी के संपूर्ण जीवन के विभिन्न अंगों को प्रकाशित किया है। प्राथमिक ग्रंथकारों में 'केसरी' के भूतपूर्व संपादक स्व० अ० स० करंवीकर, स० स० आळतेकर ने अभिचारपूज बाणी से समर्थजी के जीवन क्रम का सापेक्ष विवेचन करके जो भाष्य पाठकों के सामने समुपस्थित किया

है यह मयबा बिचारप्रधान घोर प्रासादिक सिद्ध हुआ है। इसने अतिरिक्त स्वर्गीय प्रो० माटे ने समयजी व बिचारा का मयन कर उनके बिचार-आगर का प्रत्यक्ष दर्शन ही पाठको को कराया है। सुवय्री न० १० फाटक, गो० नि० दाण्डकर घाटि विद्वान साहित्यकारा ने भी समयजी के जीवन के दृष्टन अपने अपने शरित्त ग्रंथों द्वारा कराये हैं। समयजी के जीवन-काल स महाराष्ट्र में सतों महता एवं वीर पुरुषों के शरित्त-ग्रंथ निगन की परम्परा आरम्भ हुई है। यह भी समयजी के जीवन का एक प्रसाद ही माना जाता है, जिसक कारण भारतीय एवं महाराष्ट्रीय जीवन अतिविधि पाता रहा है। फिर समयजी का जीवन शरित्त जीवन व विभिन्न घर्षों को गुणमान वाला होन क कारण महत्त्वपूर्ण तथा समाज व सभी स्तरा के लिए मामदगक रूप होन स अनुकरणीय भी है।

कैतना भरे लोगों में  
 अतिविधि के समूहों को  
 काहे समर्थ उपार्थि तब  
 विवेक बात उपानवा से ॥

—दामबोर समान १५

समयजी के घाटत धीरेन का घण्ट कोई सुनेन है तो वह उपरास्त पबिनया स पाया जाता है। घाटत जीवन शरित्त का गढ़ा का आ टाग परिमाण समयजी व जीवन स पाया जाता है वह एक सुगन्धुस्य स हा हा मयना है। परन्तु घाटत तब त्रिन युग पुरयो का घाटत हमने अपने नामन रगा घोर शिमक अनुमार तम अपना जीवन बिठावे है उन सुगन्धुस्यों व घाटत को ही हम

जानते हैं। उस आदर्श को पाने का प्रत्यक्ष प्रमाण ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। साथ ही साथ उस आदर्श की ओर बढ़ते हुए सामने आने वाली घड़ियों से भी हम अभिन्न रहते हैं। इस अवस्था में अपनी अनुभूतियों को ही प्रमाण मान हमें आगे बढ़ना पड़ता है। समयत्री का चरित्र इन सारी कठिनाइयों का निवारण करने के लिए समर्प है। क्योंकि जीवन के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने अपने आचरण से सुसम्भलने के माय धतलाये हैं। सामान्य से सामान्य जीव भी अपने अपने कर्मगत साधना के शास्त्रीय रूप को प्राप्त कर, अपने जीवन को सुखी बनाकर मोक्ष का अधिकारी किस प्रकार बन सकता है इसका विवेचन समर्पजी ने किया है।

यह सत्य है कि जीवन छोटा हो या बड़ा हो परन्तु उसमें, किसी स्वरूप में क्यों न हो, कुछ-न-कुछ भेद अवश्य पाया जाता है। उस भेद को जाना-पहचाना गया और उसे समाजसुखी बनाया गया तो सामान्य कहा जाने वाला आदर्श आदर्शिक भी बन सकता है। इस प्रयास के लिए व्यक्तिगत सम्पत्क बढ़ाकर जीवन निर्वाह की चिन्ता जिस महापुरुष में होती है वह महापुरुष युगपुरुष कह-सकता है। अर्थात् यह कार्य शक्ति-सम्पन्नता और तक-प्रधानता के बल से ही किया जा सकता है। जीवन के साथ समूहों को गतिविधि देने वाला चरित्र आदर्श चरित्र—समर्प-चरित्र—होता है। इसी प्रकार के चरित्र-निर्माण का प्रयास चरित्र-ग्रन्थों द्वारा होना चाहिए। हमें विश्वास है कि हमारा यह प्रयास मानवोचित उन सभी गुणों का पोषण कर, दुर्गुणों का परिहार कर हर किसी के जीवन में अभ्युदय और मोक्ष की साधना में सामर्थ्य भरने का काम करेगा। फिर चाहे किसी भी आदर्श पर चलने वाला मनुष्य

क्यों न हो। पर उस आदर्श की प्राप्ति के सभी उपायों को वह इस प्रयास के द्वारा जान सकता है।

दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता करो दूसरा के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी बनो दूसरा के दुःख निवारण में स्वयं दुःख उठाओ सुख के माग को और दुःख के निवारण को जानकर उसे दूसरों के हित में बरसो, साम दाम, कण्ट और भेद के रहस्यों को जानकर कल्याण-साधना में लग जाओ समूह के कारण व्यक्ति का अस्तित्व स्थित होता है और व्यक्ति के कारण समाज बनता है। इस भूमिका को धारण मत बनाओ स्वयं के लिए भोग भोगो, भोग के साधनों को जुटाओ षुटने पर उनके आधीन मत बना कार्य छोटा हा बचवा बड़ा परम्पु उससे घम-साधना हो इस बात का ध्यान रखो, व्यक्ति और समूह के हित चरित्र-निर्माण का प्रयास हो—यही ममपत्नी के जीवन चरित्र का आदर्श है और चरित्र-ग्रन्थ का प्रयास है। यह कहता है—

उत्कट भयाना को पुन संवारे  
 नीरसता को पुन त्यागे,  
 निस्पृहता से विन्यास बने  
 अथवा को इत भूमि में ॥  
 बर्दशा कर बने स्वयं  
 चिर नीचे उपदेश की  
 आचार विचार से बने नर  
 इस बार से उस पार ॥  
 उचानना का आचय से  
 दिन उचानना स्पष्ट बाने  
 अथ पठवि ताप बाने  
 उचानना दिन बचा बूबा ॥

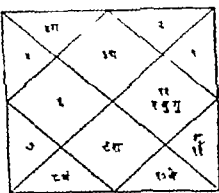
## अद्भुत् वालक

सूर्याजी पत्त नामी एक प्रथमारी पंडित मराठवाडे क श्रीरंगा काठ जिसे में जाव सेठे एक छोटे ग्राम में धार्मिक जीवनपोषण करते थे । योग देने में राणूबाई की साम्प्रदायी सराहनीय थी । प्रथ पति-पत्नी का जीवन आनन्दपूर्ण था । विन्ता केवल सतान की थी । फिर भी अपने अमनिष्ठ जीवन में वे किसी प्रकार की मुटि का अनुभव न करते थे । सूर्योपासना उनके कुल का नियम था । उपासना रूप बारह सौ ङङ लगाने में वे किसी प्रकार न चुकते थे । एक बार सूर्यनारायण स्वरूप किसी तपस्वी प्रतिपि का भक्ति-भाव प्रसन्नकरण से प्रतिपि करने क बाद व प्रतिपि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वर मांगने के लिए कहा । 'हम नाशवंत वर नहीं चाहते, कृपा करके कुछ देना ही चाहते हों तो मागवत्पत्नी एक सतान का वर दीजिये । दोनों ने एक मूक होकर ब्राह्मण देवता से वर मांगा । सूर्यनारायण स्वरूप ब्राह्मण देवता ने भी उन दोनों के मनाभावों को जानकर यह वर दिया कि आपको दो पुत्रों की प्राप्ति होगी जिनमें से एक मागवत्पत्नीय होगा और वह बक्ष-विस्तार करेगा । दूसरा हनुमानजी का अर्थ होगा जो हनुमान के समान भारतीय धर्म के विस्तार में अपना संपूर्ण जीवनमापन करेगा । ठीक ऐसा ही हुआ । एक वर्ष के अन्तर अन्तर एक वासक ने राणूबाई की गोद की घोषा बढ़ा दी । उसका

नाम गयाधर रखा गया। और जब दूसरे बालक ने राजपूबाई की गाँव को कूलाय किया तो उसका पुत्र नाम नारायण रखा गया। इसलिये कि सूर्याजी पंत सूर्यदेव के उपासक थे। और सूर्यनारायण स्वरूप ब्राह्मण देवता ने जा कर दिया था उसी के फलस्वरूप यह बालक था। यही हमारे परिभनायक हैं।

समयजी ने चन्द्र शुक्ल ६ ठीक दोपहर के समय घरे १५३० प्रभात सन् १६०८ को जन्म पाया। समयजी की जन्मकुण्डली इस प्रकार है

घरे १५३० बीसनाम संवसरे चन्द्र शुद्ध नवम्या निषी इंदु वासरे सूर्यो दयात पदि १५ पस ७ एतस्मिन् दिन माध्याह्ने बाल जामदग्नि यात्रोत्पन्न सूर्याजीपठ समथ सो भास्ववति राजपूबाई गाम्नि



भासा नारायण नामानं पुत्र प्रागूत। धूम भयनु।

यह जामदग्नि यहाँ दमिए ली गई है कि ज्यानिय वाग्मज समयजी के ज्योतिष को जान करें। अगर दामस्य रवि उच्छपन्स्य होता तो यह निजय ही राज्यरद दता। समयजी न राम का गुणद और महाराष्ट्र वास्तवामिण्य जा पाया है उगका मृत्त वारण मोन का रवि गुह गृह म म्पिन है।

जब जामजीनी को सूर्याजीपठ ने मृत्त जामदग्नि दिगाई तो वह घबराह रह गया। उसने कहा कि यह बालक ६६ वर्षों तक

हनुमानजी के समान सच्चार कर रामभक्ति के महत्त्व को बढ़ाते हुए रामराज्य के निर्माण में अपना जीवन व्यतीत करेगा।

समय यक्षपक्ष से ही बड़े गटकट थे। जब उन्होंने प्रांगण में पैर रखा तो उनके धारे में शिकायतें शुरू हुईं। माता-पिता पिता करने लगे। दीवारों पर चढ़ने का अभ्यास पूरा होने के बाद समर्पजी बुनारोहण की संयारी में सग गये। खेलकूद में किसी से पराजित होना वे अपनी दान के विरुद्ध मानते थे। अर्थात् किसी के धरारत करने पर उसकी मरम्मत करने में वे ज़रा भी घानाकानी न करते थे। हाँ यदि कोई सज्जनता बरसता तो समर्प के समान उसकी हिमायत करने वाला भी कोई न होता। पाँचवें वर्ष में विधान के अनुसार उनका व्रतवष हुआ और सचमुच वे व्रतधारी बन गये। जब उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई तब ग्यारह पाठों में पुस्तकीय ज्ञान पाया ग्यारह घंटों में सुभाष्य अक्षर के अभ्यस्त हुए और ग्यारह पहरो में आय-व्यय का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वसंत पटवारगिरी के अधिकार को सम्पन्न बनाने की कामना प्राप्त कर ली। ब्रह्मकर्म और संस्कृत भाषा के भी वे ज्ञाता बने।

जब उन्होंने दसवें वर्ष में पदार्पण किया तो संगी-साधियों ने उनको अपना मुस्तिया बनाया। स्वभावतः उनका बहुत-सा समय खेलकूद की भेंट होना लगा। समर्पजी की इस प्रवृत्ति को देखकर उनकी माता ने एक बार कहा, 'बेटा, बार-बार की कुछ चिन्ता किया करो। जीवीसों घट खेलकूद में व्यस्त रहना उचित नहीं है।' माता का यह कथन सुनकर समर्पजी अन्तरमुख हो एक घंड़े के कमरे में चिन्ता का चिन्तन करने में व्यस्त हुए। सुबह भाठ बजे से लेकर रात्रि के दस बजे तक जब समर्प कहीं दिखाई न दिए तब

उनकी खोज शुरू हुई। वडे भैया ने समयजी के मित्रों छोटे-बड़े पेड़ों और मन्दिरों तथा पास-पड़ोस के घरों में समयजी को ढूँढा। पर कहीं पता न पता। समयजी की सामग्री का पता होने पर भी माता का हृदय पुत्र के गाय जाने पर व्यथित हो उठा। वह मन मनी-सी घर क घर में ही इधर-उधर दौड़-धूप करने लगी। सयोग वश उस अंधे कमरे में जान पर समयजी को उसने पाया। जब माताजी ने यह पूछा कि यहाँ बड़े-बिठाये क्या कर रहे हो तब समय जी बोले, "पितृ का चिन्तन"। समयजी के टके-मे इस उत्तर को पाकर माता निरुत्तर हो गई। समयजी मिस गये तो घर भर को पान्ति मिस गई। चिन्ता दूर हो गई।

पीरे-पीरे समयजी का चिन्तन तीव्र रूप धारण करने लगा। उनके पिताजी मूर्खोपासना के रूप में एक हजार इंड मगाते थे समयजी ने हजार इंड मगाने लगे। ब्राह्मण में मगन भगवत् धाराधना की धर्या भी बढ़ गई। अर्थात् धनता-दूधना बढ़ हो गया। परन्तु उनकी भगवत्-पूजन में अपना सारा समय मगाते और घर के काम-काज में उनसे किसी प्रकार की सहायता न मिलती देखकर माता पुनः चिन्ता में डूब गई। उसने कहा, "बेटा भगवत्-पूजन से घर-बार नहीं चलता। घर-बार को चलाने के लिए धनाज की आवश्यकता होती है। धनाज को प्राप्त करने के लिए श्रम उठाने पड़ते हैं।"

माताजी की यह बात सुनकर समयजी ने पन्च पूजे, हर घरे गतों का पचटन किया। धन-धान्य में भरे-पूर बिगी एक मंग को दगने के लिए वे वहाँ बड़े घोर बात की बात में जवागी के बड़े बार को एक भटक में उठाकर घोर धरनी टापी का पीठ



पर हंगकर घर में भाये। समर्थजी की इस सामर्थ्य को देखकर घर वाले दर्शक और वृषक भी आश्चर्यचकित रह गए। क्योंकि पत्नी से भरा बोरा तगड़े से तगड़ा जवान भी एक मटके में उठा न पाता था। समर्थजी के अनुभव साहस को देख कर माता ने यह निश्चय किया कि घर-बार के धारे में प्रथम से कुछ न करूँगी।

एक बार घर पर किसी समारोह के आयोजन में ब्रह्ममोक्ष का प्रवचन हुआ। समारोह की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। केवल छाछ का प्रवचन बाकी था। जब समर्थजी ने पहले दिन यह जाना तब रात ही रात में कुम्हारों के घर से मटके लेकर दिन निकलने के पहले घर पर जाकर छाछ माँव साये और छाछ के मटकों से उन्हें न मटार पर भर दिया। जब माता ने सुबह मटार पर छाछ से भरा-पूरा देखा तब उसने अनुभव किया कि किसी यात की चिन्ता करना व्यर्थ है। एक तो समर्थजी के सामर्थ्य को वह जान चुकी थी और घर के कारण समर्थजी को किसी प्रकार की पीड़ा न हो इस धारणा ने उसके मन में घर कर लिया था। अतः मन-ही-मन चिंतित रहने लगी कि नारायण अर्थात् समर्थ किसी प्रकार बिरागी न हो जाए।

सन् १६१३ में केवल पाँच बय की आयु में समर्थजी व्रतधर्म संस्कारों से युक्त किए गए। सन् १४ में उनके बड़े भैया विवाह बंध बनाए गए और सन् १५ में सूर्याजी वंश ने सवार से विदा ली। स्वभावतः पितृत्व का भार बड़े भैया गंगाधर पतजी के सिर पर पड़ा। वे भी केवल तेरह बय के निरे बालक थे। फिर भी समर्थजी के बड़े भैया होने के कारण बुद्धिमानी में किसी प्रकार कम नहीं थे। पिताजी के अनुसार ही वे घर का काम-काज देखने लगे।

सूर्याजी पत धपनी साखिब और व्रतनिष्ठ प्रवृत्ति के कारण उस  
 इलाक में मगहूर थे । इसलिए अनक व्यक्ति उनके पास जीवन का  
 भाग्यदान पाने के हेतु आते थे और अनुग्रह प्राप्त कर अपने  
 जीवन को सफल बनाते थे । सूर्याजी पत व गोमोबवाछ के बाद  
 भी व भक्तिभाव से आते रहे और यासक गगापर पत योग्यता  
 के अनुसार उन्हें अनुग्रह देकर सम्पन्न बनाते रहे । सबसामान्य  
 रीति से उन दिनों लोगों की यह धारणा थी कि गुहमत्र पाये  
 बिना मोक्ष का द्वार नहीं खुलता । लोगों की यह दृढ़ भावना  
 धारमसाक्षात्कार का काम दे सकती थी । मन चगा होने से  
 कठोर्वी में गगा का अनुभव कर धवन वगे मन के विस्तार में वे  
 गुहमत्र की महत्ता को विषय महत्त्व देते थे । म्यारह वर्षों  
 समयजी ने भी गुहमत्र के लिए भया से हठ किया । भया बोले,  
 "तुम अभी छोटे हो इसलिए गुहमत्र पाने के अधिकाारी नहीं बन  
 सकते ।" बड़े भैया का यह कहना सुनकर समयजी थोपिठ हुए  
 और हनुमानजी के मन्दिर में जा हनुमानजी के चरणों से लिपट  
 कर उन्होंने धपनी दृढ़ प्रतिज्ञा हनुमानजी का सुनाई, "जब तक  
 प्रभु रामचन्द्रजी से मैं गुहमत्र प्राप्त न करूँगा तब तक धपनी  
 लिपट न ही उन धान रूँगा । जाइ की रात थी । धाम म बपड  
 नहीं थे । पट गापी था । फिर भी धपनी पगन म ध गुप-बुध  
 गोये हनुमानजी के चरणा में लिपटे पड रहे ।

तत्र तं वृद्धिंयोगं तमने शीघ्रे हितम्  
 पतते च तनो भूप ततिट्टी कुरन्तरत् ।

मगपद्गोता के इस वचन व अनुमार तथा हृदयपरय माराप-  
 के जाग उठने के बाद समयजी ने उस रात्र प्रभु रामचन्द्रजी के

सगा । गगाधर पंथ 'सावधान' की प्रतिज्ञा को जानते थे इसलिए उसके इस प्रकार पासग होने पर उनमें समर्थजी के प्रति घट्या दरकी भावना जाग उठी । बेचारे बाराती और रिदतेदार इस 'सावधान' में कुछ तो सावधान हुए और कुछ सुध-बुध लोए बठे रहे । जो सावधान हुए उन्होंने समर्थजी की सामर्थ्य को जाना और जिनकी सुध-बुध लो गई वे समर्थजी को असमर्थ कहने लगे ।

## योग साधना

समय ही न ठीक विचार के समय पर भागन की योजना पहल ही बना रही थी। यद्यपि जांब या घामन गाँव के अति-रिक्त किसी प्रदत्त को उन्होंने नहीं देखा था परन्तु उन्हें यह भावना थी कि कृष्णा नदी गोलावरी से वहीं मिलती है वहीं पास-पास वहीं प्रभु रामचन्द्र की सपत्न्या भूमि पक्षवटी है। इसलिए कृष्णा नदी के किनारे से होते हुए वे कृष्णा और गोलावरी के संगम तक बढ़ते ही रहे। लगभग दो सौ मील का रास्ता तब परत समय उनकी महायज्ञा केवल थी राम जय राम जय जय राम न ही की। तब पर बपट नहीं थे। पैरों में जूत नहीं थे। किर पर पगड़ी नहीं थी। पास में न राख-भामनी थी और न पैसा था। घोड़ी और घण वस्त्र जो आरण्य वन का पागाव हाथी है वसु उहाँ चम्पों के गाँव से पक्षवटी पहुँचें। जब प्रभु रामचन्द्रजी के दान उन्होंने पाए तब बहूँ मारपानजापा गाँववती का अनुभव उन्होंने किया। प्रभु रामचन्द्रजी के दान-भाद्र में भू-भ्याम और बहान जाने परी माँ गई। दापहर का गोलावरी से नहारर प्रभु रामचन्द्रजी का भक्तिभाव से पूजा पढ़ान के बाद गुला भिगा माँद लाए और एवान पर प्रभु रामचन्द्रजी का मरव बहान के बाँ ग्यय भाजन किया।

समय ही न ठीक विचार के समय पर भागन की योजना पहल ही बना रही थी। यद्यपि जांब या घामन गाँव के अति-रिक्त किसी प्रदत्त को उन्होंने नहीं देखा था परन्तु उन्हें यह भावना थी कि कृष्णा नदी गोलावरी से वहीं मिलती है वहीं पास-पास वहीं प्रभु रामचन्द्र की सपत्न्या भूमि पक्षवटी है। इसलिए कृष्णा नदी के किनारे से होते हुए वे कृष्णा और गोलावरी के संगम तक बढ़ते ही रहे। लगभग दो सौ मील का रास्ता तब परत समय उनकी महायज्ञा केवल थी राम जय राम जय जय राम न ही की। तब पर बपट नहीं थे। पैरों में जूत नहीं थे। किर पर पगड़ी नहीं थी। पास में न राख-भामनी थी और न पैसा था। घोड़ी और घण वस्त्र जो आरण्य वन का पागाव हाथी है वसु उहाँ चम्पों के गाँव से पक्षवटी पहुँचें। जब प्रभु रामचन्द्रजी के दान उन्होंने पाए तब बहूँ मारपानजापा गाँववती का अनुभव उन्होंने किया। प्रभु रामचन्द्रजी के दान-भाद्र में भू-भ्याम और बहान जाने परी माँ गई। दापहर का गोलावरी से नहारर प्रभु रामचन्द्रजी का भक्तिभाव से पूजा पढ़ान के बाद गुला भिगा माँद लाए और एवान पर प्रभु रामचन्द्रजी का मरव बहान के बाँ ग्यय भाजन किया।

भी प्रभु रामचन्द्रजी के सिवा अपने सुख-दुख की बातें किसी से नहीं करते थे। इसीलिए उन्होंने किन सफ्टों का किस प्रकार मुकाबला किया इस बात का विवरण उनके उपलब्ध जीवन चरित्रों में नहीं पाया जाता। उन्होंने दासबोध, कष्टपाटक आदि जो काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं उन्हींके आधार पर उनके चरित्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। उन्हीं काव्य-ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि जब वे वहाँ पहुँचे तब सपरिवारों के लिए गोदावरी का जल निवास के लिए पर्यतीय गुहा, भिक्षा के लिए पड़ोसी ग्राम टाकळी और अध्ययन के लिए नासिक शहर का राममन्दिर तथा अध्ययन और निवास के लिए स्थान और कार्यक्रम निश्चित किया। सुबह उठकर स्नान-संध्या के बाद लगभग पाँच घंटे प्रभु रामचन्द्रजी को पूजा बढ़ाकर वे कमर तक गोदावरी के मगजस में जप करते थे। जब दोपहरी होती तो पड़ोस के टाकळी गाँव में जाकर भिक्षा माँगते और पर्यतीय गुहा में पहुँचकर स्नाना-पकामे के बाद तीन बजे प्रभु रामचन्द्रजी को नैवेद्य बढ़ाते और स्वयं भोजन पाते। तीन से लेकर छ एकनाची मागवसु, उपनिषद् ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी गीता वेद आदि धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन एवं विस्तार करते थे। छः से लेकर दस बजे तक नासिक के राममन्दिर में कथापुराण सुनते और रात को म्यारह बजे अपनी गुहा में जाकर रामचित्तम के बाद विधाम पाते। इस दैनिक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उन्हें रोजाना पंद्रह मील का चक्कर लगाना पड़ता था। उस में जप करते हुए वे धब सड़े रहते तो अनेकों जलकर उनके पर घुटने टकने पोटरियाँ आदि नोच-नोचकर खाते थे। परन्तु समर्थजी इस तपस्या में जरा भी मुकाव छिपाव से काम न

सते थे। यहाँ तक कि परों में घनेक घाव हो जाने और उनके सब जाने पर भी उन्होंने अपनी तपस्या भग्न न होने दी। इसके प्रति-रिक्त इतनी छोटी-सी उन्न में इस प्रकार घोर तपस्या करते हुए देस घनक लोग उनके घारे में सर्दक हुए।



### उपारया

कुछ माग कहने मग घोर होगा। कुछ कहने मगे हयारा हागा। कुछ कहने मग नम्वर एक वा न्ठा हागा इसीलिए ता यह म्वाग िए हुए है।' ऐसी घाने कहकर ममपत्री को छेड़ने

एव सताने में भी कुछ लोगों ने कोर-कसर बाकी न रखी। परन्तु मुम्बलाहट ही क्या अप्रसन्नता के भाव भी समयजी के चेहरे पर प्रकट न होते थे। वे भ्रगर किसी बात की रट मगाते थे तो प्रभु रामचन्द्रजी के आशीर्ष की। और यह रट भी उपासना के भ्रमसर पर ही रहती थी। तपदर्पण, कीर्तन, पुराण-कथा अथवा ब्रह्मरुम के भ्रमसर पर वे इस भाव को मन में भी नहीं लाते थे।

इस प्रकार धारह वर्ष समयजी ने योग साधना की। अपने निमोजित काय को किसी प्रकार अर्द्धित नहीं होने दिया। योग जो भी जी में घाटा बड़ कहत और रोडे घटकाते रह गए। अपने शरीर को मजबूत बनाने के लिए समयजी प्रतिदिन दो हजार डड लगाते थे। उनकी धारणा थी कि शरीर-बल के बिना मनो बल नहीं बढ़ता। मनोबल को बढ़ाने के लिए धम, नियम और समय की उन्होंने धरण ली। उन्हें बिश्वास था कि मनोबल के बिना आत्मबल नहीं बढ़ता। इसीलिए मन को आभात प्रत्याभात के परिणाम से घनाते रहे। उन्हें इन बात का भी भरोसा था कि जब आत्मबल बढ़ जाएगा तब प्रभु रामचन्द्रजी से साक्षात्कार होगा और साक्षात्कार के बाद श्रेय जीवन समाज या राष्ट्र-कार्य के लिए उपयुक्त बन सकया। इसीलिए जाडा, गरमी और बर सात की भी उन्होंने परवाह न की। शरीर को मन को और आत्मा को अपने अपने ढंग से तपाते रहे।

जिस प्रकार समयजी को प्रकृति से उलझना पडा उसी प्रकार समाज के साथ-साथ शरीर और मन से भी उलझना पडा। परन्तु आत्मबल की अष्टता के कारण वे इन सारी उलझनों को सुलझाते बले गए। अस्त में जब तेरह करोड मंत्र-जप

पूज्य हुआ और मारी सपन ध्यानन्द में परिणत होने लगी तब उन्हें विद्वान् हुआ कि प्रभु रामचन्द्र की ही कृपा है। प्रबु के विद्वान् ही दशन देंगे। एक दिन जब वे नासिक के राम-मन्दिर में राम चिन्तन कर रहे थे तो प्रभु रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी और सीता-माई के साथ दशन दे कृपा कर उन्हें 'दाम' की उपाधि दी। ममय, समय घने।

'दाम' इस उपाधि का स्वयं प्रभु रामचन्द्रजी के द्वारा प्राप्त करने में समयजी को महान प्रसन्नता हुई। इस उपाधि से उन्होंने धन का भूषण किया। वे स्वयं को 'रामदाम' कहते थे और यह शब्द भी लते थे। उन्होंने धन खरिदाय या खरिद-प्रय को जो 'गणेश' नाम दिया है वह इसी भूमिका का प्रमाण है।

उपाधि के साथ-साथ उन्होंने प्रभु रामचन्द्रजी से भारत भ्रमण की भी आज्ञा पाई। और दान की व्यवस्था का स्वयं जान कर उसको पीड़ा को दूर करने के भाव भी जान।

प्रभु रामचन्द्रजी की यह आज्ञा या यों कहिए धारम जान का यह दशन समयजी किसी स्वरूप में टाल नहीं सकते थे। इस आज्ञा के लिए ही मानो समयजी ने योग साधना की। धनवा प्रभु रामचन्द्रजी ने उनकी याग साधना दृष्ट कर उन्हें याग्य पुरुष जान यह आज्ञा दी। विद्या जनता जनार्दन की दयनीय व्यवस्था को दान यह चेतना उन्हें हुई। कुछ भी हा परन्तु हमें कोई नन्दह नहीं है कि और तत्त्वा का पर उन्होंने पाया।

योग की गव-मम्मत् परिभाषा गानत्रय है। जो राम हम उदात्त है उस काम का मन्त्र बनाने के हेतु मन् प्रवृत्ति में धारिषक मानसिक और पारारिक मगन में करनी जाने वाली क्रिया की ही



योग श्रमवा सामंजस्य कहा जाता है। परन्तु आजकल योग शब्द का प्रयोग केवल धर्म की भूमि को व्यक्त करने के लिए ही किया जाता है। परन्तु यह प्रयोग उचित परिभाषा के रूप में नहीं होता। योग शब्द में जो गंभीर है, जो विस्तार है, वह सामंजस्य इस परिभाषा में अपने प्राय व्यक्त होता है। सामंजस्य का अंग्रेजी रूप ब्रैडजस्टमेंट है। जो निर्धारित काम में बरती जाने वाली सामंजस्य दण्ड और भेद की नीति इसी अर्थ में ग्राह्य मानी जाती है यदि वह सत् प्रवृत्त हो। इन्हीं भावों का दशन योग के द्वारा होने से योग शब्द का प्रयोग किया गया है।

समर्थजी ने जो भाषा प्रभु रामचन्द्रजी से पाई उसका मूल में योग साधना ही मुख्य रूप से है। भविष्यत् जीवन में उन्होंने धर्म जागृति और राष्ट्र-जागृति वर स्वधर्म और स्वराज्य की नींव जमाई। यह काय भी योग साधना के बल पर ही हो सका।

### योग साधना नीति

शुद्ध उपासना शुद्ध भाव ।

नीतिपात और बाह्यप्य रक्षण ॥

शुद्ध चरम्परा का शुद्ध लक्षण शुद्ध मार्ग ॥

—शासबोध

यह स्पष्ट है कि समर्थ रामदासजी कम-मार्गी थे। उनका यह कहना था और वे स्वयं अन्त तक इसी भूमिका के आधार पर बस कि मनुष्य को अन्त तक कर्म करना चाहिए। उनकी यह धारणा थी कि हर व्यक्ति को कर्म-मार्ग से ही उपासना करनी चाहिए। जिससे ज्ञान प्राप्ति होती है और धनन्तर मोक्ष का लाभ होता है। समर्थजी की इस भूमिका के अनुसार यह स्पष्ट होता

है कि भारतीय जा कम करेगा वह सर्वोदयी है। परन्तु केवल सर्वोदयी कम से ही काम नहीं बनेगा वरन् उम उपासना में भी अपनी दृढ़ता को बनाए रखना चाहिए। अर्थात् उसकी यह धारणा बननी चाहिए कि बिना किसी माँग के उपासना करनी है। अगर धनासक्ति से उपासना करेगा तो दृढ़ ज्ञान को वह पा सकेगा। जब दृढ़ ज्ञान की प्राप्ति उसे होगी तब वह धीतरागी हो जाएगा और ब्रह्म की रक्षा का मार उसने जिम्मे हागा। अर्थात् सदप्रवृत्ति की रक्षा कर असदप्रवृत्ति का विनाश समता भाव से और दृढ़ धारण से उस करना चाहिए। समयजी ने उपासना और ध्यान को स्पष्ट करने के लिए 'दृढ़' विशेषण का उपयोग किया है परन्तु धीतराग अवस्था को पुष्टि देने के लिए किसी श्लाघ विशेषण का प्रयोग नहीं किया है। धीतरागी के लिए उन्होंने अन्तर्ग्रह स्पष्ट रूप में लिखा है कि जब तक मन धीतरागी नहीं बनता तब तक भयल दारीर को मयसंग परित्यागी बनाने से बार्द साध नहीं हागा। जो धीतरागी भयल दारीर का प्रशसन करते हैं उन्हें समयजी ने सूच पटवारा है।

प्रथो ब्रह्मस्तपः शोच शान्तिरात्रब्रमेव च।

ज्ञान विज्ञानमाहितपय ष्ट्य वम रवभाब्रम् ॥

भगवद्गीता के दस ध्याना का लक्ष्य करने ही समयजी ब्राह्मण्य गण का प्रयास करस रहे। यानी गमदमादि पदगुणों का त्रिसमें नियाम है और जो साधिका प्रवृत्ति से ब्रह्म ज्ञानाधिष्ठित दृढ़ कम धारणा है उसीमें ब्राह्मण्य पाया जाता है। एम ब्राह्मण्य की रक्षा करने के लिए त्रिस दृढ़ वम का ध्यात्रय समयजी ने लिखा है वह कमवा का विशेषण का ही स्पष्ट ब्रह्म है। ब्राह्मण्य

को रखा होनी चाहिए फिर चाहे वह साम से हो, दाम से हा दण्ड से हो धनवा भेद से हो। समर्थजी की यह नीति उनके अपने सम्प्रदाय की विशेष नीति है। यद्यपि यह नीति धर्म-सम्मत है परन्तु इस नीति का समस्त बुद्धि से परिपालन बहुत कम अवसरों पर होता है। सासकर पथ पक्ष या सम्प्रदाय का पक्षपात इस नीति को धरतने नहीं देता। समर्थजी ने गृहस्थी धर्म से लेकर विद्वधम तक की उपासना में इसी नीति का प्रबलवन किया। कम उपासना ज्ञान अराम्य और ब्राह्मण्य की धाराधना में इसी नीति—सुदृढ धर्मवा योग साधना से समर्थजी ने नाम लिया। उनके इस योग में वे आसस्य के लिए स्थान था न द्वेष बुद्धि को आश्रय था। सुदृढ भाव से भगवत् चरणों पर समर्पित करने के हस्तु ही कमवाद का चरितार्थ धर्म ग्राह्य है—यह समर्थजी की विशेष भूमिका थी। इस प्रकार के आधरण का आग्रही बहो बन सकता है जो आत्मानुभूति से अपने आपको स्वयं परिमार्जित करता है। योग साधना करने वालों से उनका कहना है—

जो धर्म्याय से बचता है, जाता है ध्याय धर्म्याय का लोक तपस्वी तब बनता है, नीति ध्याय से चलकर जानी मूढ़ बनता से जो काम कराए सर्वदा जानी बहु बनता है तब उपयोयिता जानने पर बड़ी धर्म है भयवान का हिने नीति जयधर्म में समता से देखे जब निराधी, तापी लोगों को कर्म से उपासना राजे राजे वैराग्य धारने अनुभूति से ज्ञान राजे वैराग्य विचार से काल पाग बाँपता है, हृदिकवा निरुध्य को ताकिकों जानियों को भी जानी ज्ञान तब रहे

लोक ज्ञान के जो तानी बंधनों से विमुक्त कर  
 प्राथमे हित लोगों का जानी पावन बन सके ।

—रासबोध

समयजी ने यह प्रत्यक्षानुभव योग-साधकों के लिए ही  
 कहा है । सबमाधारण जनता के लिए उसकी प्रवक्तृत्वों के अनु-  
 रूप समयजी ने योग साधना का माग बतलाया है । यही उमका  
 उल्लेख प्रस्तुत है । योग साधना की यह भूमिका स्पष्ट रूप में  
 हमें यह बतलाती है कि भगवान के दरबार में प्रत्याय घोर  
 पीड़ा व यथनों से जो मुक्ति दिलाता है वही योगी है—जानी है  
 घोर भगवद्भक्त है ।

## योग साधना का फल

आत्म-साक्षात्कार भारतीय सभ्यता की सर्वश्रेष्ठ देन है जो केवल योगियों और साधु-संन्यासियों के लिए ही नहीं अपितु सर्व सामान्य जनता के लिए उसके उद्यम-व्यापार में भी प्रयोग की जा सकती है। जब किसी विषय का हम रात-दिन चिन्तन करते हैं तब वह काय बनकर ही रहता है। अर्थात् उसके बनने-बिगड़ने का भार लगन पर अवसंबित होता है। लगन में चिन्तने परिमाण में एकाग्रता होती है उतने परिमाण में उस लगन का फल हम पाते हैं। फल कीजिए 'अथ यावत् विलम्बला गृह' का बोर्ड टाँगकर हमने दूकान लगा दी और नाम के अनुसार हम अपनी कला का जोहर दिखाने लगे तो ग्राहक के साथ-साथ धन और धन के साथ-साथ कीर्ति को हम अनायास पा सकते हैं। यहाँ तक कि थोड़ा कलाकार भी हम सिद्ध हो सकते हैं। केवल ईमानदारी सज्जनता निपुणता समय की पावदी आदि गुणों को हमें अपनाया चाहिए। ठीक यही बात आत्म-साक्षात्कार की है। जिस प्रकार तपस्या के योग से हम आत्म अर्थात् भगवान से साक्षात्कार कर सकते हैं उसी प्रकार उद्यम योग की भी बात है। अथ 'साक्षात्कार कोई अनहोनी घटना नहीं है।

जब समर्थजी की जन्मभूमि जाँच गाँव में प्रभु रामचन्द्रजी ने उनको दर्शन देकर 'श्री राम जय राम जय जय राम' का मंत्र

जपने का धनुष्यह किया तब समथजी को उसी समय प्रेरणा हुई कि हनुमानजी के समान मैं समाज एवं राष्ट्र का उद्धार कर रामराज्य का निर्माण करूँगा। इसी धारणा के अनुसार साक्षात्कार के अवसर पर समथजी को नासिक में प्रभु रामचन्द्रजी ने 'दास' की उपाधि देकर गौरवान्वित किया। या या कहिए कि उन्होंने रामराज्य की स्थापना का प्रण प्रभु रामचन्द्रजी के सम्मुख किया। 'यदा यदाहि धमस्य' इस गीता-अध्याय के अनुसार उन्हें यह विश्वास था कि धम का उद्धार करने के लिए क्षत्रिय-जल में भगवान् जीवत धारण करेंगे।

समथजी ने उस समय यह धनुष्यह किया था कि हिन्दुधर्म पर मुसलमानों के द्वारा अक्षयनीय अत्याचार होता है। साथ-साथ उन्होंने यह भी देखा था कि धम के अनुसार यरतने की क्षमता हिन्दुधर्म में गप नहीं रही। मारा का मारा हिन्दू-समाज अक्षय्य बन धम के विरुद्ध रूप के प्रत्यानम मीन है। इसी वाक्याधि में नामिक धान पर गिषात्री के पिता गहात्री रात्रा समथजी के मिय। उन्होंने भी समथजी को उग्र तपस्वया का जिन मुना था। गणेश राजा जागीन्दार या बीजापुर दरवार के अधिष्ठान ही हा परतु गुड धामिक प्रयुक्ति के ध। इसीलिए धन-शोचत, पद मयाग धपवा मान-मम्मान से प्रभावित धपवा मुगी धनम का धपशा ये हमेंगा दु गी रुने ध। उन्होंने भी यह मगा था और यहाँ तक कि धनुष्यह भी विजा था कि मारा हिन्दू-समाज मुसलमान धान गणेश के अत्याचार ने अम्न है। कबल हिन्दू जाति में जम पने के कारण उनका माप किया जान थागा मुन्नागी दुष्प्रवृत्त धराध्य है।

हिन्दू जाति को दयनीय दशा और उनके साथ होने वाले प्रत्याचारों को देखकर सहाजी राजा हमना उद्विग्न रहते थे । हिन्दुओं की दयनीय दशा से भी वे घृणा करते थे । क्योंकि हिन्दू जाति अधार्मिक हो गई थी । यद्यपि वे हिन्दुओं के हिमायती थे । अपनी परिनीमा के अंतरगत किसी हिन्दू को पीडा पहुँचते देख उसकी पीडा को वे तुरन्त दूर करते थे । फिर भी केवल हिन्दू होने के कारण उन्हें जो सत्तारा बाधा या वह सबका अधम्य अमानवीय होने से उसके नाश की चिन्ता में वे हमेशा व्यग्र रहते थे । हिन्दुओं की असहायता का परिणाम अपने बाल-बच्चों पर न हो इसलिए उन्होंने अपने बाल-बच्चों को सत्तारा जिसे की अपनी जागीर के स्वतंत्र वातावरण में रखा था । उन्हें इस बात का भी विश्वास था कि धर्म की जागृति के बिना हिन्दू जाति सजग नहीं हो सकती और किसी अवतारी पुरुष के बिना धर्म जागृति नहीं हो सकती । मुस्लिम शासकों के दुर्व्यवहारों एवं अगणित अत्याचारों को देखकर उन्हें विश्वास हो गया था कि निश्चय ही जब भगवान अवतार धारण कर धर्म की जागृति करेंगे । क्योंकि अज्ञान ही इति तत्र होती है जब वह अपनी सीमा को पार कर जाता है । सहाजी राजा भोसले स्वभावतः धार्मिक प्रकृति के थे । धार्मिक भावनों पर उनका विश्वास था । इसीलिए धर्म की जागृति करने वाले साधु-संतों के प्रति उनके हृदय में असीम सहा नुमूर्ति थी । जब उन्होंने नासिक में समर्थजी से साक्षात्कार किया तब उनको विश्वास हुआ कि हो न हो समर्थजी निश्चय ही धर्म की जागृति में योग देने की सामर्थ्य लिए हुए हैं—इस लिए समर्थजी से एकान्त में मिलकर उन्होंने विचार-मंथन किया ।

यातचीत क प्रथम में समयजी ने इस बात को भी जान लिया कि गहाजी राजा नोंसल एक पुत्र रखे क जनक हो चुके हैं जिसका गुम नाम गिवाजी है। और यह अपनी जागीर में—राजगढ़ दुर्ग के स्वतंत्र बातावरण में—हिन्दू धर्म क अनुसार शिखा-भीखा ग्रहण कर रहा ह। इस समाचार का सुनकर नमैयजी बहुत प्रसन्न हुए। गहाजी राजा नोंसल को इच्छा के अनुसार समयजी ने यह भी स्वीकार किया कि मैं गिवाजी को अनुग्रह दूंगा।

समयजी और गहाजी राजा नोंसल की यह भेंट मानो योग साधना का एक फल ही है। दोनों में व्यापारिक साम्य था और दोनों ही दक्षिणगामी थे। हम दोनों की यह भेंट ही भाग्य-स्वयम् और स्वराज्य निर्माण क लिए साधक बनी।

इन दिना स पहले की बात है, गोदावरी नदी क किनारे समयजी पूजापाठ आदि श्लाकम म स्नान ध्यानम्भ बैठ थे। सामन म अगिहोत्री गंगाधर पत की अरधी गुजर रही थी। पश्चिम का माहृषय शनम्भवात् तब प्राप्त हो इस धर्मसाधना क उनकी धर्मपत्नी अन्नपूर्णा आई भी गनीधम का पालन करम के हेतु मन्त्रमन्त्र कर गाय हा गई थी। गानायत्री क रिनारे जब तपस्वी समयजी का उग्रम दगा तय महागमन क पुत्र तपस्वी के काम पात्र अर्पण का कृताय बनात क हेतु क समयजी क पत्नी म न्त म् । समयज्ञा न मनदे। ही आगाप द दिया

“अन्नपूर्णा गीमात्मदनी नय !”

“म जन्म म या अगत मे ?”

अन्नपूर्णा या क म्भ गारय का मनकर समयज्ञा न यन्तु स्थिति को जान लिया और दूना म करा “अन्न राधप-दूना मे



दरबार में 'भ्राज नकल और कल उधार' यह नीति नहीं है।' यह कहकर समर्थजी ने श्रीराम जय राम जय जय राम' का मंत्र पढ़कर मंत्राभिषिक्त जल का घब पर सिंचन किया। जैसे ही



प्राण-दान

सिंचन हुआ जैसे ही 'राम राम' का उद्घोष कर मगाधर पंत मामो जाग उठे। यह देख लोग धारधर्म-बन्धित हुए। परन्तु समर्थजी ने गम्भीर होकर कहा, इसमें धारधर्म की कोई बात नहीं है। सद्बासना का फल सदा घण्टा ही होता है। अगर तुम अपनी कृतकृता का अनुभव करते हो तो रामराज्य का निर्माण करने के

हेतु घाठ पुत्रों में से किसी एक पुत्र को सौंप दो। जब घनपूर्णा बार्द्धि ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया तब उसे समथत्री की घाजा के अनुसार उनको सौंप दिया, जिसका नाम उद्धव था जो समथत्री के महंतों में से एक त्रिग्विजयी महंत बना। ममथत्री ने घनपूर्णा को—

प्रभु रामचन्द्रजी के प्रिय्य की घोर घय इस भूमण्डल में नाक-भों चड़ाघर बैठने का साहस कोई न कर सकेगा। प्रभु रामचन्द्रजी का 'दास' बनकर घब में बाधन हो गया हूँ। अब तक बनता ही पीड़ा को मैं दूर न करके ताब तक अपने को समथ न समर्पूण। मुझे विश्वास है कि प्रभु रामचन्द्रजी का दास न पतित बन सकता है घोर न पथन को दैव लक्षता है बर्षोदि दास बनने के कारण स्वयमेव बहु पावन बन जाता है।

—दासबोध

यों ता याम साधना के घनेक फल ममथत्री ने पाये परन्तु लौकिक दृष्टि से क्षत्रिय-वरा में जन्म लेने वाले हिन्दुओं के एक समय द्वितीय को पाया घोर गगाधर पतजी को प्राणदान देने से समूच समाज में घाशर का स्थान प्राप्त कर सक। इसका घतिरिक्त सम्प्रदाय का प्रचार करने का हेतु उद्धव स्वामी को भों प्राप्त किया। शरीर का द्वारा मन, मन का द्वारा घाम्मा घोर घारमा का द्वारा प्रभु रामचन्द्रजी की जो कृपा पार्द्धि यह समथत्री के जीवन में जीवन भरने वाली थी, इससे कुछ ही त्रिना में समथत्री की कीर्ति मयत्र फैल गई।

कुछ ताकिरों का हृदय में कल्पित एक घात गन्ध बेला कर गकत्री है कि मून गगाधर पतजी कयल मंत्राभिधिरुत जन्म-निबन्ध करने पर जीवित कमे हो गए? यह प्रश्न स्वाभाविक भी है।

परन्तु पाठक यह जान लें कि गंगाधर पंत अग्निहोत्री थे। यम, नियम और संयम से अपना जीवन बिताते थे। अर्थात् इच्छा शक्ति समझें घटूट थी। जब उनका हाथ-पैर डोल पड़ गए और लोग ने बिश्वास कर लिया कि वे चल बस है तब उन्हें उसी अवस्था में भरघी पर डाककर से आ रहे थे। समय है कि पंच प्राणेंद्रिय उनके शरीर में उस समय भी रह गईं हों। उन बिनो न दवाखाने में घोर न डाक्टर। बस यह कम सिद्ध हो सकता है कि वे मर चुके थे? जब समयजी ने अग्निपित्त जल से सींभा तब पारीर की म्पानि दूर हुई होगी पंचप्राणा ने शरीर में शक्ति भर दी हागी और वे जोर उठे हंगे।

इस तरह की अनेक घटनाएँ हम आज भी देख सकते हैं। डाक्टर के जबाब दे देन पर अपने मनोबल या आत्मबल के कारण अनेक बीमार भल भगे बने हम पा सकेंगे। अतः गंगाधर पंत का जाग उठना अलौकिक घटना भल ही हा पर मानसशास्त्र की दृष्टि से यह पंचप्राणों का स्वाभाविक धर्म है। अस्तु।

यह बात सिद्ध है कि समर्थजी की तपस्या का प्रभाव सर्वत्र छा गया और लोग उन्हें योगी समझ उनकी शरण में आए। इतना ही नहीं उनके दर्शन मात्र से अपने को कृताय भी समझने लग जिसका कारण समर्थजी भविष्यत् के कार्य को ज्ञान में सफल हो सके।

## कर्म-साधना के पथ पर

जो धारोसन करता है स्वयं  
सामग्य भरता है जहाँ तहाँ  
भोस खाता पतित पावन  
धम के बल बनता है वह ॥

—रासबाप

प्रभु रामचन्द्रजी के द्वारा 'दाम उपाधि प्राप्त करने के बाद ममपत्नी को सामग्य को अनुभूति हुई। उन्हें बिद्वान् हुआ कि दुनिया की कोई भौतिक शक्ति जब मुझे पराजित नहीं कर सकती। जब मुझे जबल हनुमान बनना है। बिना हनुमान बने दाम्पत्य का कारण अत्याचार का मामला, धम की प्रत्यापना आदि उपायों को खूँड़ना अशक्य है। य स्वयं तपस्या की कालावधि में समाज की धार्मिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति को जान चुकें। और फिर राजा महाराजों को द्वारा भी अस्तुम्पति को उन्होंने जान लिया था। इसका अनिश्चित गिवाजों राजा भी बहुत छोटें धर्म द्वारा महाराष्ट्र धम की प्रत्यापना करने थी। अतः निदान ही धुवन पर भी दाम्य उपाय के बिना भीमारी दूर नहीं हो सकती। इन सब बातों का साफरूढ़ के तीर्थस्थान के निमित्त परिश्रमों के लिए निकल। जहाँ बागहूँद के अन्त में उस पथबर्ती के पवित्र स्थान का स्वागत करने हुए गुरु हुए हुए। पथबर्ती के साधुमता से श्री प्रभु रामचन्द्रजी

के सन्निकट थे—विलग्न होते हुए उन्हें बलेश हुआ। इसके प्रति रिक्त ब्रह्मपूर्णा ने प्राप्त शिष्य उद्धव का भी भार उम पर था। वह भव पाँच-छ वष का हो चुका था। ब्रह्म-विद्या के अनुसार उसका व्रतवय संस्कार भी समर्थजी कर चुके थे। संस्कारों के कारण पूण रूप से विरागी बनने पर भी वह समर्थजी के सान्निध्य को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। तीर्थाटन की सारी विपदाओं को सहने के लिए वह तैयार था। परन्तु उसके प्रेम भरे निग्रह को निभामा सर्वथा अनुचित था। इसलिए उसकी इच्छा के अनुसार समर्थजी ने उसे अनुग्रहीत किया और धाराधना के लिए उसे हनुमानजी की एक मूर्ति बी जो गोवर से बनाई गई थी। तब कही गुसाइ उद्धव प्रसन्न हुए और लौटने तक उस मूर्ति की उपासना ब्रह्मकर्म जप-जाप्य एवं ध्यान-प्रध्यापन का अभिबन्धन उनसे समर्थजी पा सके। गुसाई उद्धव को धनुग्रह देकर, शिष्य बनाकर और हनुमानजी की प्रस्थापना कर समर्थजी ने अपनी कर्म-साधना का प्रथम खड पूर्ण किया।

कृष्णा और गादावरी के मध्य प्रदेश को जो महाराष्ट्र का परिचामक है अपनी उपम्या से अभिमूढ कर समर्थजी ने भारत भ्रमण के लिए पंचवटी से प्रस्थान किया। अर्थात् गिरि शिखरों उपजाऊ खेतों हरे भरे उद्यानों एवं छात्रसंतों की इस मंगल भूमि से बिछुड़ते हुए उन्होंने यह निश्चय किया कि कहीं कौंसे और क्यों जाया है। इतना ही नहीं अपितु जहाँ जाना है वहाँ की अवस्था का परिज्ञान प्राप्त करके क्या करना होगा इस बात को भी उन्होंने सोचा था। उन्होंने तय किया था कि भिक्षा के बहाने हर कहीं जाया जा सकता है। भिक्षा के निमित्त हर किसी को यह-

जाना जा सकता है। मित्रा के कारण हर किमी की परीक्षा ली जा सकती है। और उत्तीर्ण परीक्षार्थी का घम का सुगी-भाषी बनाया जा सकता है। गरीबखाल से हो मनोबल से हो घमबल से हो प्रयत्न प्रयत्न से हो—ये मारे के मारे घममगी समाज एवं राष्ट्र के उद्धार में काम आ सकते हैं। इतना ही नहीं उनमें जो गुण लिखाई हों उनको भी मोड़कर देगदित में लगाया जा सकता है। इसीलिए मित्रा का कार्यक्रम उन्होंने निश्चित किया। दूसरा कार्यक्रम बनाया तीर्थटन का। जिससे अनेक नगरों, शहरों, व्यापार-उद्योगों एवं सामाजिक, धार्मिक प्रयत्नार्थी को परमा जा सकता है। और उपयुक्त स्थानों पर कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा सकता है।

ममय रामदासजी ने भारतभर के प्रमुख घम-स्थानों तीर्थ-स्थानों के प्रतिरक्त लगभग १० हजार गाँवों में भी घमना सम्बन्ध स्थापित किया। वहीं उन्हें दो दिन रहना पड़ा तो वहीं छ महान विताने पड़। तीर्थ-स्थानों में वे स्वभावतः अधिक दिन रमत रहे। हर स्थान पर पर्यटन के बाद उस स्थान के सुयोग्य पुरखों को उन्होंने पुना और उनका योग्यता के अनुसार घमने-घरने व्यवस्था के साथ घम समाज और देग-साध में लग जाने के लिए उनका मागणम किया। यहाँ यह स्थान देन की बात है कि यह मारा दोषोंवाग ममयत्रा ने स्पष्ट किया और गुप्त रूप से किया। मम याम में उन्हें बारह घण बठिन परियम करना पटा। घम को बट्टरता, जाति का उच्चता प्रयत्न घम की श्रद्धा को उगाने बट्टर्य नहीं दिया। स्वतंत्रता प्रयत्नता और स्व-नमायता के लिए जो ही घमना स्पष्ट मानकर उनके संघर्षन से हर किमी

# श्री समर्थ की तीर्थ यात्रा के प्रमुख क्षेत्र



तीर्थ-यात्रा के प्रमुख स्थान वहाँ समर्थजी ने अपना विशेष संघर्ष स्थापित किया

स योग पाने की कल्पना का उन्होंने प्राथम लिया। इसीलिए वे राष्ट्रगुरु और धर्मगुरु बन सके। भारत भ्रमण के प्रवसुर पर उन्होंने देखा

(१) पर उपदेश कुत्रण बहुतरों का बाजार गम है।

(२) धर्म की कट्टरता सम्पूर्ण रीति से लुप्त हो चुकी है।

(३) मान-सम्मान की भावना नहीं रही।

(४) हिन्दुओं पर दिनदहाड़ घस्याचार किए जाते हैं।

(५) हिन्दू स्त्रियाँ खुद धाम प्रपहृत और बेइज्जत होती हैं फिर भी कोई धर्म को प्रपमानित नहीं मानता।

(६) हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट कर उनका अपांतर मसजिदों में किया गया है।

(७) हिन्दू जाति पतित पीड़ित एक मृतवत हो गई है।

(८) धर्म ने बीमारियों न समाज का प्रपमा गिबार बना रगा है।

(९) न किमी में उस्माह बाकी है न कुछ करन-परन का माहम गप है।

(१०) प्रपिबतर हिन्दू गुलाभी क पदा को सबप्रष्ट समझत हैं और उममे धर्म को भूषित कर गौरवाम्बित मानते हैं।

(११) एक दूसरे क प्रति न बिस्वाम है न महानुभूति।

(१२) गुण-जानुपता में सारी जनता मग्न है।

(१३) धर्म ही भाइयों को नीचा गिनाकर उनम पुना करने में ही बहादुरी का अनुभव किया जाता है।

(१४) उदम प्रियता नष्ट हा रही है। गर्मावरण मुक्त हुआ है।



(१५) कसक, दुःख और दरिद्रता का राज्य सर्वत्र फैला है।

हिन्दू समाज की यह दृष्टा देखकर समर्पजी तिरुमिता उठे परन्तु केवल नाक-भों बढ़ाने से धांसू बहाने से बचवा उपदेश सुनाने से किसी प्रकार का लाभ होने की सम्भावना नहीं थी। फिर भी उन्होंने क्रोध के मारे यह कहा

“इस समस्या में धामुलाय परिवर्तन करने के हेतु या तो मर जाना चाहिए बचवा इस परिस्थिति के निर्वाताओं को मार डालना चाहिए। बटववास बसा में बीबित रहने की प्रवृत्ति मर जाना लाभ करने बेहतर है। जो भी कुछ ही या तो बस बीबित रहे या मर जाए परन्तु इस समस्या में नहीं किया जा सकता है।”

समर्पजी की यह विचारधारा उचित हो या प्रामुखित हो परन्तु उनके हृदय की पीड़ा को—जो धमनाय क रूप को देखकर हो रही थी—स्पष्ट करती है। इसी पीड़ा ने उनके हृदय में प्राग जला दी और यही प्राग उन्होंने समाज और देश में फँसाई—मड़ काई। उन्हें यह विश्वास था कि चिनयारी भी मड़काने पर प्राग का रूप धारण करती है। इसी मूल भावना की पड़ पकड़कर उन्होंने हिन्दू समाज की निपण्य समस्या को बढ़ा-बढ़ाकर विन्दित किया। जिसके कारण भुंमलाहट और प्रतिशोध की भावना हिन्दू समाज में उग्र रूप धारण करने लगी। परन्तु हिन्दू धर्म की विमाल, उदार और सर्वसंग्राह्य भूमिका को किसी प्रकार प्राथ न लये इस बात को उन्होंने प्राँसों से धामला नहीं होने दिया।

वे यह जानते थे कि हिन्दू धर्म बटववास के बीज की मीठि है। बटववास की घासाएँ भसे ही दूट फूट जाएँ, उसके पत्त भसे ही

मूख जाएँ, उसका सना मत ही खसड़ बने परन्तु उसके बीज जो इधर-उधर बिखरे पड़े हैं हजारों बसों का रूप धारण करके पुन छा सकते हैं और अपनी छाँह से मारे वातावरण को हरा भरा बना सकते हैं। परन्तु यह सब कुछ होत हुए भी बीजने में स्व-संप्राप्तता को न भूलना चाहिए। उपयुक्त माद भूमि पानी और हवा की उस आवश्यकता होती है। ठीक यही बात धम-स्थापना की है। धम-स्थापना के बल पर हिन्दू धम-रूपी विशाल वृक्ष छायागार बनाया जा सकता है।

व्यक्ति और समाज की दयनीय दशा को दूर करने के लिए जिस प्रकार व्यक्ति के धारण को बनाए रखने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार स्वराज्य के बिना यह धारण टिक नहीं सकता और उसे टिकाए रखने के लिए स्वधर्म के पालन की निरन्तर आवश्यकता होती है। मसलब यह है कि धम-संस्थापना के बिना समाज जागृत नहीं रह सकता। और समाज के बिना व्यक्ति का स्वायत्त स्थायी नहीं बन सकता। इसलिए व्यक्ति समाज दोनों धम जागृति का साथ उम्होंने एक साथ धूम किया। इस धार्मिक अनुसंधान के अनुसार उम्होंने धम-स्थापना का पहला कदम उठाया।

उम्होंने अनुभव किया कि अगर कुछ भाव से धम-धूमि पर धोड़ोन्नत किया गया तो जन-जागृति हो सकती है और जन-जागृति से जनता अपनी दक्षिण को प्राप्त कर सकती है। जन जागृति के धनक धर्मों का पोषण करने जो जनता में दक्षिण भगा है वह निष्पत्ति ही पण्डित-भावने धर्मों मान का दाता हो सकता है। इस उद्योग के लिए—

प्रथम हरिकथा लिख्यम् ।  
 द्वितीय राजनीति बाल ॥  
 तृतीय साधनात्मता ।  
 तत्त्वं मृत हित एव की ॥

—शान्तबोध

समूचे भारतवर्ष का भ्रमण कर हिन्दुओं की जो दयनीय वृत्ता समर्थजी ने देखी उसके निवारण में यह माग उन्होंने लिखित किया जो प्रत्येक युग में और प्रत्येक अवस्था में बरता जा सकता है। भगवान के दरबार में भय को स्थान नहीं होता। जो डर पोष है वे भगवद् भक्त नहीं बन सकते। निर्मय होकर धर्मभूमि से जो चलता है वह भ्रमण पाता है। धर्मभूमि के आचार पर ही सब प्राणियों के हित की चिन्ता की जा सकती है और यह चिन्ता ही सर्वप्राणियों को राजनीति से संलग्न बनाकर राज्य क्रांति का बीज बो सकती है। चाकिर क्रांति के बिना राज्य क्रांति असम्भव है और राज्य क्रांति के बिना सारे प्राणियों का हित नहीं साधा जा सकता। इसी विचारों को दुढ़ बनाकर कर्म-साधना के पथ पर समर्थजी ने अपना पहला कदम जमाया। इस कदम के अनुसार चलते हुए समर्थ रामदासजी ने जो सामर्थ्य पाई है उसे भतजन कहने वाले महानुभाव प्रत्यक्ष महापट्ट में भी कुछ कम नहीं हैं। कुछ सज्जनों का यह कहना है कि राजनीति से प्रत्यक्ष संबंध समर्थजी का था नहीं। क्योंकि किसी लड़ाई में उन्होंने प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं लिया था। कुछ लोग यह मानते हैं कि वे केवल नवृत्ति पार्थी थे क्योंकि प्रवृत्ति का अनुसरण प्रत्यक्ष में उन्होंने नहीं किया अर्थात् गृह युद्धों में उन्होंने नहीं बसाई थी।

कुछ माग यह धाम्त्र उठाते हैं कि समयजी की नीति माम  
 यिक थी। क्योंकि धाम्त्रके जीवन में वह अनुकरणीय नहीं है।  
 परन्तु बारीकी से मनन करेंगे तो हमें यह विश्वास होगा कि  
 लोगों के ये धारों सबका निराधार हैं। क्योंकि जो स्थिति उस  
 समय थी वह आज भी बतमान है और उससे मुक्ति पाने के माग  
 जो हर अवस्था में बरत जाते हैं। समयजी न 'दामबोध' 'मनो  
 बोध' 'वर्णाष्टक' आदि जाप-प्रयत्न में हैं उनमें यह स्पष्ट होता  
 है कि वे धमनीति राजनीति और समाजनीति में पारंगत थे।  
 इन तीनों नीतियों को धमनाने के लिए जिस धाम्त्राधार की  
 आवश्यकता होती है उस धाम्त्र में जो वे प्रबोध थे। बुद्धि की  
 बमोटी पर बमने के बाद हमें यह मानना पड़ेगा कि समयजी की  
 धम-साधना भारतीय जीवन का धाम्त्र नियम है—प्रमाण है।

भारतीय जीवन का धमार्थ रूप प्रभु रामचन्द्रजी और भग-  
 वान श्रीकृष्णजी के जीवन एवं धम-साधना में जिस प्रकार हम  
 पा सकते हैं ठीक वही रूप समय रामनाथजी के जीवन एवं  
 धम-साधना में मिलता है। क्योंकि इन तीनों महापुरुषों के धम-  
 गुरु पर धम राजनीति और समाज की समान अवस्था रही है।  
 यह स्पष्ट है कि प्रभु रामचन्द्रजी और भगवान श्रीकृष्णजी के  
 समान राजनीति का प्रथम स्थान समयजी ने भी दिया। इसी  
 लिए प्रथम में उन्हें लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी। फिर भी लड़ाई  
 की भाँति में समानता की नूतिका का धाम्त्र हमें जाना है और  
 फिर स्वयं समयजी भी इस बात का दावा नहीं करते हैं कि  
 जीवन में धम राजनीति को प्रथम स्थान दिया है। धम प्रभु राम  
 चन्द्रजी और भगवान श्रीकृष्णजी के जीवन का धाम्त्र ही हम

प्रथम हरिकथा निरूपण ।  
 द्वितीय राजनीति काय ॥  
 तृतीय सावधानता ।  
 सब मृत हित रत की ॥

—वामबोध

समर्थ भारतवर्ष का भ्रमण कर हिन्दुओं की जो घमतीम वसा समर्थजी ने देखी उसके निवारण में यह मार्ग उन्होंने निश्चित किया जो प्रत्येक युग में और प्रत्येक अवस्था में चलता जा सकता है । भगवान् क दरबार में भय को स्थान नहीं होता । जो डर पीक है वे भगवद् भक्त नहीं बन सकते । निमग्न होकर धर्मभूमि से आ चला है वह समय पाता है । धर्मभूमि के आधार पर ही सब प्राणियों के हित की चिन्ता की जा सकती है और यह चिन्ता ही सब प्राणियों को राजनीति से संलग्न बनाकर राज्य चरित का बीज बा सकती है । धार्मिक चरित के बिना राज्य-चरित असंभव है और राज्य चरित के बिना सारे प्राणियों का हित नहीं साधा जा सकता । इन्हीं विचारों को दृढ़ बनाकर धर्म-साधना के पथ पर समर्थजी ने अपना पहला कदम जमाया । इस कदम में अनुसार चलते हुए समर्थ रामदासजी ने जो सामर्थ्य पाई है उस धतक्य कहने वाले महानुभाव प्रत्यक्ष महाराष्ट्र में भी कुछ कम नहीं हैं । कुछ संजनों का यह कहना है कि राजनीति से प्रत्यक्ष सबन्ध समर्थजी का था नहीं । क्योंकि किसी लड़ाई में उन्होंने प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं लिया था । कुछ लोग यह मानते हैं कि वे केवल मूर्ति मार्गी थे क्योंकि प्रकृति का अनुसरण प्रत्यक्ष में उन्होंने नहीं किया अर्थात् गृह गृहस्थी उन्होंने नहीं बसाई थी ।

कुछ लोग यह धारणा उठाते हैं कि समयजी की नीति मामूली थी। क्योंकि धार्मिकता के जीवन में वह अनुकरणीय नहीं है। परन्तु खारीकी से मनन करेंगे तो हम यह विश्वास होगा कि लोगों के ये धारणा मजबूत निराधार हैं। क्योंकि जो स्थिति उस समय थी वह धार्मिक भी बतमान है और उससे मुक्ति पाने के माग भी हर अवस्था में करते जाते हैं। समयजी ने 'दामबोध' 'मनाबोध', 'करणदृष्टि' आदि जापथ प्रयत्नसे हैं उनमें यह स्पष्ट होता है कि वे धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति में पारंगत थे। इन ताना मीतियों को धरने के लिए जिस शास्त्राधार की आवश्यकता होती है उस शास्त्र में भी वे प्रवीण थे। बुद्धि की पगोटी पर बसने के बाद हमें यह मानना पड़ेगा कि समयजी की धर्म-साधना भारतीय जीवन का शास्त्र नियम है—प्रमाण है।

भारतीय जीवन का यथायुक्त रूप प्रभु रामचन्द्रजी और भगवान श्रीकृष्णजी के जीवन एवं धर्म-साधना में जिस प्रकार हम पा सकते हैं ठीक वही रूप समय रामदासजी के जीवन एवं धर्म-साधना में मिलता है। क्योंकि इन तीनों महापुरुषों के धर्म-मार्ग पर धर्म राजनीति और समाज की समान अवस्था रही है। यह सत्य है कि प्रभु रामचन्द्रजी और भगवान श्रीकृष्णजी के समान राजनीति को प्रथम स्थान समयजी ने नहीं दिया। इसी लिए प्रत्यक्ष में उन्हें लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी। फिर भी लड़ाईयों का नीति में समानता की भूमिका का स्थान हमें होता है और फिर स्वयं समयजी भी इस बात का दावा नहीं करते हैं कि जीवन में मैंने राजनीति का प्रथम स्थान दिया है। परन्तु रामचन्द्रजी और भगवान श्रीकृष्णजी के जीवन का धर्म ही हम

समयकी को कर्म साधना में पात है।

यद्यपि भारतीय जीवन में ऐसे घनेकों महाभागों ने जन्म लिया जिनके धादस का हम मानते हैं। परन्तु कर्म साधना का जो धादर्श समयकी में समुपस्थित किया है वह परम्परागत होने के कारण धरिताय किया जा सकता है। जो उन घनेकों महाभागों को बदन करते हुए भी हम इस बात का अनुभव करते हैं कि भारतीय जीवन-परम्परा की साधना प्रभु रामचन्द्रजी के बाद भगवान श्रीकृष्ण ने की है और अनन्तर उसी भोग साधना का उपायन समयकी ने किया है। यह सत्य है कि इन तीनों महाभागों का धादर्श ही भारतीय जीवन को पोषण देकर समय बना सकता है क्योंकि भारतीयों की प्रकृति, प्रकृति निष्ठा और जीवन-साधना में समानता है। कोई किसी विधिष्ट तत्वज्ञान के धाधार पर यह कहे कि आधुनिक जीवन में पुराने धादर्श काम नहीं जा सकता मत उनका समाग किया जाए तो उसका यह कहना अममूलक सिद्ध होगा। क्योंकि भारतीय जीवन का धादस शाश्वत है—सनातन है। हाँ यह ठीक है कि समयानुकूल, रीति-रिवाजों और उन साधनों के प्रयोगों में परिवर्तन हो सकता है। परन्तु हमें यह निश्चित रूप से समझ लेना होगा कि परिवर्तित रीति रिवाज भारतीय जीवन से विच्छिन्न होकर भारतीय जीवन को संपन्न नहीं बना सकते। क्योंकि भारतीय जीवन में जीवन विषयक प्रत्येक सिद्धान्त के बारे में समीक्षा से विचार किया गया है। जिसके मम और वित्त से यह बात प्रनायास सिद्ध होती कि सबसेतम ऐसा कोई धादस नहीं है जिसके बारे में भारतीय जीवन में न सोचा हो। मत किसी विधिष्ट भूमिका का धाग्रह

कर भारतीय जीवन को गढ़ने का प्रयत्न करना सबसे अनुचित सिद्ध होगा। फिर चाहे अथवा ही शरीर धर्म ही भूगर्भ शास्त्र ही अथवा विज्ञान का कोई पहलू हो। इन सभी सिद्धान्तों का विचार भारतीय जीवन-दृष्टान्त ने किया है और अपने साक्षात्कार से उन सिद्धान्तों की गतिविधि निर्धारित कर उन्हें परिपुष्ट भी बनाया है।



## कर्म-साधना

मठ, महन्त और शिष्य

समर्थ रामदासजी अपने को हनुमानजी का समकक्ष मानते थे। इसलिए कि हनुमानजी भी प्रभु रामचन्द्रजी के अनन्य उपासक थे और वे भी थे। दोनों ब्रह्मचारी दीर्घयोगी और निवृत्ति मार्गीय थे परन्तु धर्म तथा समाज की रक्षा करने के हेतु, दूसरों का जीवन सुखी बनाने के लिए प्रवृत्ति-भाग के उपासक वन धार्मिक परिश्रम करते रहे।

धर्म का प्रादश स्थित करने के लिए काशी माता की शक्ति देवता के रूप में हनुमानजी को युक्ति देवता के रूप में और प्रभु रामचन्द्रजी को धाराध्य देवता के रूप में समर्थजी पूजते रहे। समूचा हिन्दू समाज इसी प्रादश पर स्थित हो इसलिए समर्थजी ने जन-जागृति के लिए हिम्बुस्थान में ११०० मठों की स्थापना की जिनके द्वारा कर्म-साधना का कार्य होता रहा। परन्तु मठों की स्थापना करना और कमहीन शब्द रूप धर्म की उपासना करना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। मठों के द्वारा प्रचारित धर्म के लिए सुयोग्य धर्माधिकारियों को ईँककर उन्हें प्रमुग्रह देने की योजना भी वे मठों के साथ-साथ करते थे। मठ तथा मठ-पठि का ध्यय तथा योगक्षेम चलाने के हेतु साधन सामग्री का भी वे प्रबंध करते थे। प्रत्येक कार्य में विधि विधान को निर्धारित

कर तक-सुगत योजना मठों और मठाधिपतियों के द्वारा सुचारु रूप में चल इस बात का भी ध्यान ठन्हीने रखा था ।

मठपतियों के दो प्रकार थे । एक मन्मासी और दूसरे गृहस्थाश्रमी । सन्मासी मठपति को महंत कहा जाता था और गृहस्थाश्रमी मठपति को गिप्य । परन्तु साहे गिप्य ही भयवा महंत ही उसे निर्धारित दिनचर्या का ही पालन करना पड़ता था । सुबह उठकर स्नान संभ्यादि ब्रह्मकर्म से निवृत्त होने के बाद सूर्योपासना के रूप में बारह सौ डंड मगाना दोपहर को भिक्षा के निमित्त शाम में घूमकर जीवन-ज्योतियों को परम उन्हें प्रखलित करना दोपहर के बाद अभ्यसन-अभ्यापन और शाम को कथा-पुराण सुनना-सुनाना सब का दैनिक काम था । समाज एवं धम-नायक शारे में रात्रि के नात अक्सर पर मोचना और निर्धारित सबेले के अनुगार धमद्रोहिया का प्रबन्ध उनके ही द्वारा भयवा हिन्दू धमद्रोहियों के द्वारा चुपचाप कराना हिन्दू-हित तथा समाज के विरुद्ध चलन काम का प्रनिगोप प्रयत्न में भयवा धमद्रोह में सना या पिबाना, हिन्दू धम के मठों पर्यो गर्ब पदा में मामत्रस्य स्थापित करना प्रत्यक्ष धमद्रोह में प्रतयटाहस हिन्दुओं का बचाना यदि कोई हिन्दू भी धमद्रोही हो तो उसे भी उचित नद देना—ज्यादि भी दैनिक काम के धम के त्रिहें समपत्री स्वयं मठ में कुछ दिन रहकर सापत्न्य में । उमर पालन में धानाकाना न हा दगति भी समपत्री ने मुक्त रूप में प्रवृत्त कर रखा था । समपत्री ने कबल मन्त्रों का धरने तथापिरार मोंरे ध—ध स्वतंत्र शक्ति मठों को स्थापना कर सकत ध और गिप्य बनाकर उर धनूपर भी द मकत ध । परन्तु गिप्य साह मठपति ही बनों में



हो उसे केवल धर्म प्रचार का ही काम करना पड़ता था। ऐसे ही स्थानों पर मठों की स्थापना की गई थी जहाँ की भूमि उनके योग्य हो। मठों की स्थापना में मुख्य रीति से दो बातों की धोर विशेष ध्यान दिया जाता था। एक धर्मजागृत स्थान और दूसरा धर्मियों से पीड़ित स्थान। धर्मजागृत स्थानों से महंत एवं शिष्यों की संख्या बढ़ा कर उन्हें समय-समय पर धार्मिक स्थानों में हिन्दू-हित की रक्षा करने के हेतु भेजा जाता था। धार्मिक स्थानों में केवल धर्मजागृति कर हिन्दुधर्म में सहनशीलता बढ़ाने का प्रयास कर

जिन ग्यारह स्थानों पर समर्प-जी ने हनुमान जी के मंदिर स्थापित किए, उनका विशेष धर्मों के द्वारा हुआ है।

उन्को ढाड़म धघाया जाता था । महाराष्ट्र के प्रतिरिक्त उत्तर भारत में लगभग ११ मी मठों की स्थापना ममयजी ने की थी । मठों का निर्माण गाँव के बाहर, पर्वतों एवं पवनीय गाढ़ में होता था जिससे समाज-सम्पर्क का लाभ उठात हुए भी उसके सम्पर्क से दूर रहकर गुप्त कार्यों की योजना बनाने में सुविधा हो ।

चेतना भरकर लोगों में  
 लोभों से जुटाते रहें लोग ।  
 धर्म सत्ता के निर्माण में,  
 पुरुषा ने गुप्त रूप ।

—रामबोध

ममयजी ने अपनी इस नीति के अनुसार हजारों लोगों का संगठन किया । जिनमें कुछ पास व कुछ दाली नीकर व कुछ प्रचारक व कुछ धनुषर व, कुछ सहपर व और कुछ गुप्तपर व । उनमें हिन्दू धर्म की सभी जातियों उपजातियों और पयों तथा मठों व शास्त्राण धर्मिक धर्म्य और गूढ़ भी थे, जाति बण और वग का विचार उम्होंने नहीं किया । व केवल धर्मसत्ता की प्रतिष्ठापना करना चाहते थे । उनकी यह धारणा थी कि गणित-सुक्ति व धर्म ग बढ-बढ़ राज्य भी जीत जा सकते हैं परन्तु धर्म-सत्ता बधाप एव धर्म्य होने से उसे महान व महान गणित भी पराजित नही पर सकती । इसीलिए उम्होंने हजारों धर्म प्रेमियों का संगठन कर उम्हें धर्म्य धर्म्य कामों में जुटा दिया । बाद-रियासतों व हमारा धर्म्य रह । धर्म्यगुप्त गुप्त बढान वाले काम धर्म जावन वी व धर्मिक धर्म्य करते थे । यही कारण है कि एक बार किसी धर्मिक धर्म्य स्थापित हुआ कि पूनरुधर्म के धर्म्य की

योजना बनाकर उसके यश धनवा धनपयश तथा काय-पद्धति का निर्णय कर वे निर्दिष्ट बनते थे । लोगों को परखने की क्षति उनमें प्रसौकिक थी । किसी को एक धार देख लेने से ही उसके बारे में सब बातें वे तुरन्त ताड़ लेते थे । कोई भी व्यक्ति किसी लास काम के लिए उनसे प्रत्यक्ष में साक्षात्कार नहीं कर सकता था । काम का महत्त्व ध्यान में रखकर ही शिष्य धनवा महंत के द्वारा उस व्यक्ति की आज्ञा-पद्धतिल कराने के बाद समर्थजी स्वयं उससे मिलते थे । धनजागृति धापत्काल-निवारण सम्मान रक्षा आदि छोटे-मोटे काम समर्थजी अपने शिष्यों के द्वारा ही कराते थे । राजनीति धर्मनीति संप्रदाय-मीति आदि महत्त्वपूर्ण बायों को समर्थजी स्वयं पूरा करते थे ।

समर्थजी के सभी शिष्यों महंतों एव मठों का सविस्तर व्यौरा जो उपलब्ध हुआ है उससे इसी बात का पता चलता है कि उनके समिकट कोम ये और उन्होंने कहीं-कहीं कौन-सा काम किया है । यों तो सूची के लिए बहुत-से स्थानों और शिष्यों-महंतों का उल्लेख किया जा सकता है परन्तु उनकी यथोचित जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती । यद्यपि गत पचास वर्षों से इस बात की छानबीन होती चली आ रही है परन्तु प्रदीर्घ परिश्रम उठाने के बाद भी समर्थजी के कायदेश और उसके सबलम तथा सभासकों का समग्र इतिहास पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सका । फिर इन सारी बातों को जानने की भी आज आवश्यकता नहीं है । भारतीय जीवन जिन आदर्शों एव कार्य-पद्धतियों से ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर सकता है उन्हीं बातों का उल्लेख वांछनीय भी है । समर्थजी के विशेष संपर्क में रहकर धर्म-स्थापना के लिए धीरे

परिष्कृत ठठाने वाले महत्त और उनके मठों को मूखी मीचे दी गई है। जिस प्रकार पुरुषों से निषादित काय का मध्यम करने के लिए प्रत्येक शिष्यों एक महत्तों न हाथ बँटाया है उसी प्रकार स्त्री-जाति न भी अपनी ओर से कोर-बसर बाकी नहीं रखी। हमें यह न भ्रमना चाहिए कि समस्यो ब्रह्मचारी य। परन्तु जब उन्होंने इन बात का अनुभव किया कि पुरुषों की प्रवेसा स्त्री जाति में धर्म-जागृति प्रथिक् है और वे ही समस्यता के काम में प्रथिक् योग दे सकती हैं तब उन्होंने स्वयं अपने शिष्यों को अनुग्रह दिया। रूप एक ध्याय की बात है कि अपने को मठपति बनाकर गिप्या एक महत्ता की उपाधि से भी नूयित किया। जगन्माता की नाचना से ही समस्यता उनमें बरतत रह। उन्होंने इस बात का ध्यान प्रकल्प र्णा कि किसी प्रकार उनकी पद-मर्यादा पर ध्यान न आए। जो काय प्रपाप्नो पुरुषों के लिए समस्यो न निषेध की थी उसी काय प्रपाप्नो का पालन स्त्री गिप्याओं से भी उनका पद-मर्यादा के अनुसार कराया जाता था। क्यों-क्यों स्त्री गिप्याएँ ऐसा काम कर जाती थीं कि स्वयं समस्यो भी ध्याय-वर्जित होते य। यह भी माय है कि पूरा स्वयं परण मने के बाद ही उनमें राजनीति, धर्मनीति और समाजनीति में काम लिया जाता था। गुण्ड काय-वाही का भार भी उनको मोना जाता था। जो स्त्रियाँ कार्णवदा विरागी बनती थीं उन्हें उनका देखकर प्रकयत्त गुरुओं के काय में ही लाया जाता था। ध्याय, ज्ञान, परिस्थिति और वास्तव्य ध्यायि मारा भूमिकाया से परणने के बाद भी प्रकयत्त म उनकी पाण्ड्या के अनुसार ही काम लिया जाता था। धर्मशास्त्र के काय में सिद्ध स्त्रियों शिष्यों से भी उन शिष्यों से विचार प्राप्त किया जा उन्नयनीय है।

जो तत्त्व प्रणाली शंकराचार्यजी ने धर्म प्रचारार्थ बरती थी व उसी का अनुकरण मठों-पोठों की स्थापना कर समर्थजी ने भी किया। जहाँ तत्त्व प्रणाली भगवान् श्रीकृष्णजी ने सामाजिक संगठन में अपनाई थी वही ठीक पद्धति का अनुकरण और अनुसरण समर्थजी ने किया। जो तत्त्व प्रणाली प्रभु रामचन्द्रजी ने राजनतिक क्षत्र में अपनाई उसी तत्त्व प्रणाली का पालन समर्थजी ने किया। फिर भी अपने को दास कहकर तथा दास रहकर समय, समय हुए और महाराष्ट्र के चिरंतन धर्मगुरु एवं राष्ट्र-गुरु बने।

## मठों के स्थाप

## मठपतियों के नाम

१	शिव	स्वयं समर्थजी
२	शास्त्र	"
३	संज्ञानमठ	"
४	टाकड़ी	उदय स्वामी
५	ईदूरभोजन	"
६	तंजावर	भीम स्वामी
७	बामणी	कल्याण स्वामी
८	द्वितीय	दत्तात्रय स्वामी
९	विद्यार्थ	दिनकर स्वामी
१०	कच्छेरी	बागुदेव स्वामी
११	बादेवी	देवदास
१२	कारणे	बासकराज
१३	"	प्रह्लाद
१४	भासेवी	निबकराज
१५	बीडापी	मुसलाम
१६	नीसवा	दाण्वाप्पा

	मठों के स्थान	मठपतिपों के नाम
१७	मिरबट	बाबी
१८	"	नारायण
१९	मन्वारगुडी	घनत स्वामी
२०	तेमगन	महुँत शिबराम
२१	पाण्डीब	चंकरमोसाडी
२२	मननाबट	बयराम सोसाडी
२३	आबतबाडी	घनु
२४	पंढरपुर	घनत
२५	दहाराजपुरी	त्रिबक दयना
२६	धौदुबर	हरिदास
२७	प्रयाग	बेपीमाधव
२८	घयोप्पा	रामहृत्त
२९	नपुण	हरिहृत्त
३०	नायाररी	बदहृत्त
३१	कापी	रामबट
३२	बाबी	मदबंत
३३	घरगिवा	पंदावर
३४		रघुनाथ
३५	हारबा	हरि
३६	बटिबेगा	दत्त
३७	मारटी	बिदरंभर
३८	घौंरादेवरा	बट्टदास
३९	घौंटा	बन्नाट
४०	धौ धंभ निगर	बेभट्ट
४१	धीवाटकर	गौराट
४२	दरडी महर	मन्नादि



## मठों के स्थान

## मठपतियों के नाम

४३	धूप्येस्वर	धानंद
४४	रामेस्वर	हनुमंत
४५	मत्स्याळ	माकठिबास
४६	धर्मठ रामन	बसमीम
४७	कैत्र	उद्धव
४८	बाहेगात्र	मुरारी
४९	सत्यश्रुंग	उदास
५०	तापीपुर	कृष्ण
५१	पाली	रंगनाथ धाठमुळ
५२	हेळबाक	तुकोबा
५३	मावडा	धंवाबास
५४	शूरठ	बमार्धन
५५	रामटेक	भीबर
५६	गोवा	पोर्विह
५७	धोकर्न	भैरव
५८	तेलंगण	धिवराम
५९	रायपुर	सदाधिब
६०	भीरंग पट्टण	संकर
६१	भीवर	राम
६२	पंगामवेश	हरिबंध
६३	उजवीन	रघुनाथ
६४	सहाद्री प्रवेश	धनंतकवि

## स्त्री शिष्याएँ

- १ छारकाबाई
- २ मवाबाई

- ३ मनाबाई
- ४ धापाबाई
- ५ धम्मपुर्जाबाई
- ६ मन्नाबाई
- ७ गणाबाई
- ८ मोशाबाई
- ९ प्रताबाई
- १० कृष्णाबाई
- ११ बेनाबाई
- १२ धरधरबाई
- १३ मुखाबाई
- १४ बाबूबाई
- १५ भीमाबाई

रानी महला

किरब	बेनाबाई
रादिबट	प्रबिष्टाबाई
बाटब	धरधरबाई

उद्धव स्वामी, कन्नाय स्वामी, भीम स्वामी गिबराय स्वामी रामचन्द्र स्वामी गोविन्द स्वामी, रघुनाथ स्वामी गणाधर स्वामी धीर नारायण—ये ममपत्नी के विनाय शक में गृहण महम्बू-बाय में बाण भूय थे।

जाह, मन्त्ररत्न धीर बाटल्ल क मठा की स्वामी स्वयं ममपत्नी बनत थ। बाण चल्कर इन तीन मठों क मठारति ममपत्नी क बट भाई गणाधर तब निघन बिघ न्त। ततका धानु क पत्थान् उनक मुतुतों न दह गुणभार उठाया। इन मठा क प्रबन्ध धार

भी सुचारु रूप से होता है। पूजा-याठ, नैवेद्य आदि तथा धर्मप्रचार के लिए अनेक मठों को इनाम में जमीनें और आगीरों प्राप्त हो चुकी हैं। जिन मठों को यह सीनाग्य प्राप्त न हुआ उन मठों का प्रबंध गाँव की ओर से होता है। जिन मठों को इनाम में जमीनें प्राप्त हुई हैं वे शिवाजी के राज्यकाल में शिवाजी द्वारा प्राप्त हुई हैं। सबसे महत्वपूर्ण धर्म कोई बात हो तो वह यह है कि मुस्लिम शासनकाल में भी निबाम जैसे कट्टर मुस्लिम धर्मप्रेमी के द्वारा श्री समयजी ने और उनके मठपतियों ने जमीनें आगीर धर्मशास्त्र नियम कराए—यद्यपि ये केन्द्र हिन्दू धर्मसत्ता के निर्माण का कार्य करते थे। इसका मुख्य कारण यह है कि धर्म प्रचारक सामूहिक रूप से धार्मिक विधि के प्रतिरिक्त कुछ प्रकट कार्यवाही नहीं करते थे। धर्मसत्ता के निर्माण का कार्य व्यक्तिगत और गुप्त रूप से होता था। जिसके लिए समयजी का यह विशेष भावना रहता था कि 'कोई भी मठपति अपने मन की बात को प्रकट न करे। भूलेंता, सावधानता गुणजता के बल दीर्घायु के मिस प्रत्यक्ष में सतत सर्वत्र संसार कर धर्मस्था का परिजान प्राप्त करे। अधिकतर छोटे-मोटे काम दूसरों के द्वारा कराए। स्वयं एकांत में निवास करे। धर्म की सुदृढता बनाए रखने के लिए आचरण की कट्टरता पर विशेष ध्यान दे। विद्याम को शत्रु समझ। एक ही स्थान पर हमेशा न रहे। अपने पास किसी वस्तु का संग्रह न करे। धर्म के लिए मरने और मारने की भावना समाज में नर दे। धर्मसत्ता के लिए सर्वत्र समर्पण की ज्योति जला दे। चाहे सामान्य व्यक्ति क्यों न हो परन्तु उसको अपने हित

की रक्षा करने के लिए समय बनाय उसमें सामर्थ्य भर दे । विभिन्न भाषाओं, पंथों और मता का ज्ञान प्राप्त करे । अनेक मठ और मठपतियों के उत्तराधिकारी प्राप्त भी विद्यमान हैं और समय संप्रदाय को अविरत गति देते रहते हैं ।

मठ और मठपति के द्वारा हिन्दू धर्म रक्षक ममी बर्नों की साधना होती थी । मुख्य रूप से दमिऊ जीवन में बरती जान वाली कायवाही मुषार रूप से असे इन बात की और विनाप ध्यान दिया जाता था । अपने समान समाज की और देखने के विनाप दृष्टिकोण का महत्ता में निर्माण किया था । इसलिए महत्त या विषय हमें का काम में मग्न रहते थे । जिन महानुभावों से मम-साधना में योग लिया गया उनकी प्राप्य सूची दी जा रही है, जिस से काय-शमता और उसकी व्यापकता का आभास मिलता है ।

हालाम	गिरिपर
हरनाथ	दिबाकर
रयक	बन्ध
प्रसाद प्रबन्धक	बिट्टम
बीठनवार	निरंजन
ब्रह्मचरवार	ब्रह्म
प्रचारक मरुतल दाउ	अपर्वत
“ “ “	राय
“ उत्तर प्रदेश	विश्वनाथ
गंगाम	राय
गंगाम बाबू	बाबू
प्रभुत गति अरुण	हरिबन्ध
बाबूबाबू विद्वान	दिनकर

कामसेवक	विद्वन्महाराज
प्रचारक	नारायण
"	मामसेटी
युगधर्मसूत्रक	महाशय
बाटिका प्रबंधक	जिवक
प्रचारक बन प्रवेश	जीवनमुक्त
पूजापाठ प्रबंधक	प्रेमलक्ष्मी
बन प्रचारण कीर्तनकार	राम
तीर्थ स्वाम प्रबंधक	बादल भाषण
मानस धास्त्रक	हरिदत्त
निःस्पृहता के ज्ञाता	बन्नागी

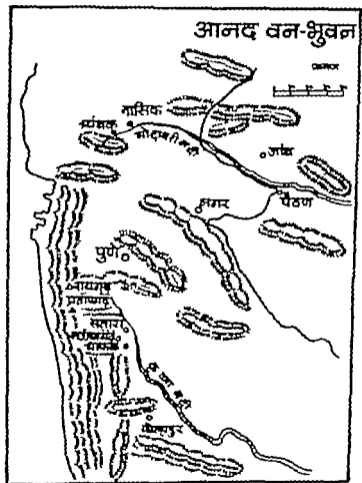
मठ महंत और उनके प्रयत्न का ब्योरा यह स्पष्ट करता है कि महाराष्ट्र में धर्म की और स्वराज्य की ओर स्थापना हुई है उसका मुख्य कारण मठों महंतों की कमसाधना ही है। हजारों की संख्या में शिष्यों और संकडों की संख्या में महंतों के उनके साथ कमसाधना में जुट जाने से लाखों लोगों का दैनिक जीवन सुलभ गया। परंपरागतता में भी बड़े धर्म के साथ आत्मानुभव कर निर्भय हो वे धर्म और राजनीति में हिस्सा लेने लगे। जिससे यह स्पष्ट होता है कि समर्थजी केवल आदर्शवादी या निरे निष्पक्ष-आर्षिय नहीं थे। अपितु जीवनविषयक अनेक धर्मों के कर्मों को साधक प्रत्यक्ष जीवन में मोक्ष का अनुभव करने के वास्ते धर्म-सत्ता के निर्माण में लगे हुए कर्मवीर थे।

## कर्म-साधना-क्षेत्र

### जीवन-साधक गृहस्थी-धर्म

भारतीय जीवन की समय बनाने वाले जितने युगपुरुषों का ध्यान हम करिनाय करते हैं उनमें स्वामी समय रामदासजी का ध्यान सबसेच्छ एव जीवन के प्रत्येक धर्म का पृष्ठ करने वाला है। यद्यपि उन्होंने बचपन से ही मयस्त धर्म का धरनाया या धीरे धरना लक्ष्य मान उसी की धाराधना में वे जुटे रह परन्तु धारमस्व 'गगनाय' का धर्यन करन के बाद हमें विद्वान् होगा कि जीवन के प्रत्येक धर्म की मंगल कर उस समृद्ध बनाने के लिए धरना का वा महामंत्र उन्होंने दिया है वह प्रत्येक धर्यति के जीवन का साधक बनगा। यही कारण है कि वे स्वयं निजी जीवन में हर धर्म के हर धर्म के धीरे हर धरणी के लिए जीवनसाथी बन। भारतीय जीवन की गतिविधि में भी जिन महाभागाने धर्म दिया है उनमें मधुसूदा इत्यादि सबसेच्छ हैं कि जीवन के प्रत्येक धर्यन का धर्म ममान् कर धरन धनुभव के द्वारा उन्होंने जीवन की गतिविधि का धरित किया। धरना ही नहीं उग गतिविधि के धर्याप धान में धरान का धान करन उमक धरिधरन में धाम धीरे धर्याधर्यन का धर्यापन भी करन रहे। धन मधुसूदा का धर्यापन धारा धर्यापन नहीं है धरिनु धनुभव के धान में यह धर्यापन धरना है। धानो-धर्यापन मधुसूदा-धरन

यरोव-घनवान, राजा-प्रजा उद्योगी-वकार, धार्मिक-अधार्मिक,  
नसा-अनुधर, सुखी-दुखी, स्त्री-पुरुष, स्पृश्य-अस्पृश्य, मालिक-



१८ X १४ मील के क्षेत्र में समर्थजी के कर्पणाना, पञ्चबाबा  
एवं कर्पणाना का कार्य किया ।

सबक यहाँ तक कि घोर घोर बदमाश भी समयजी के जानदीप से अपने-अपने जीवन को प्रकाशमय बनाने के लिए सामर्थ्य पाते हैं। मो समयजी का आदा सबके लिए अनुकरणीय हो सकता है। समयजी के जीवनादर्श की विपत्ता यह है कि उन्होंने भेदिया-धमान प्रवृत्ति का घोर विरोध कर वास्तविक विचार-जगत् में आचार जगत् को पोषण दे विचार घोर आचार में मेल बढ़ाया।

समयजी के जीवनादर्श का एक अष्ट पहलू गृहस्थ-जीवन है। इस पहलू का यथायत्न प्राप्त करने पर हमें विश्वास होता है कि स्वयं भग्यामी रहकर उन्होंने गृहस्थी धर्म के पालन का उस धर्म के पालन में उठाई जान वाली कठिनाइयों का पीर उन कठिनाइयों को उठाने के बाद प्राप्त सुख-साधन का तथा उस सुख-साधन से अलग रहकर होने वाला सतोष का जो बिना क्व भाग-दान किया है वह ज्ञान के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ तो है ही सम्पूर्ण जीवन का परिष्कार करने में भी विशेष गुणकारी सिद्ध होता है। समय 'दायबोध' का मयन करने पर यह स्पष्ट होता है कि गृहस्थ को समयजी ने जीवन के विनाश क्षेत्र में बहुत बड़ा स्थान दिया है। यही नहीं समयजी की यह धारणा भी था कि गृहस्थ जीवन ही विनाश जोषन-बड़ा की जड़ है। अब तक यह सब मजबूत नहीं होगा अब तक जीवन-युद्ध में पूर्य गमना है न पर्यद मरना है घोर न घबरो छाया में सुख-शांति प्रदान कर सकता है। अज्ञान, पीडा अज्ञानाचार, अंधविश्वास घोर सुख-शक्ति का पूर्य विरुद्ध गृहस्थ जीवन ही है। यदि गृहस्थ साधन युद्ध युद्ध का मार्ग विनाशें दूर हो सकता है। इस एकमात्र भूमि का आचार पर समयजी ने गृहस्थी धर्म पर



अधिक खोर दिया। फिर उन्होंने देखा कि मनुष्य मात्र गृहस्थ जीवन का प्यासा होता है। फिर चाहे वह किसी दशा में क्यों न हो। सबको भाने वाले जिसके लिए सब लोग सब कुछ करने के लिए तत्पर रहते हैं—ऐसे गृहस्थी धम की समस्या उठाकर ही समर्पजी ने जीवन-वृक्ष को पोषण देने के हेतु ठूट बने गृहस्थ-जीवन का उठाया और उसकी समस्याओं को सुलझाने का माग दिखाकर जीवन-वृक्ष को छायादार बना सबप्रिय सिद्ध किया।

यह सत्य है कि उन दिनों गृहस्थ-जीवन उजड़ गया था। पर पीड़न से हो या धारमपीड़न से हो गृहस्थ-जीवन क्लेशपूर्ण हो गया था। बस्तुतः किसी रूप में क्यों न हो पर भाव भी बहु कष्ट प्रद है और उसके सुलझाने पर मानवी जीवन धाज भी सुखी बन सकता है। परन्तु न उन दिनों किसी दार्शनिक ने उसे सुलझाने का प्रयास किया था और न कोई भाव उसे योग्य मार्ग से सुलझाने का प्रयत्न करता है। यद्यपि वह प्रिय है। मात्र समर्पजी ने गृहस्थ जीवन की समस्या को सबप्रथम उठाया और उसके सुलझाने का मार्ग भी बिताया जो धाज भी दीपशिखा बनकर 'दासबोध' के रूप में प्रकाश देता है।

सबसाधारण रीति से निगुण के उपासक और मस्त भीव हमेशा यह कहते रहे हैं कि गृहस्थ-जीवन दुःख का सागर है। यदि मोक्ष पाना हो तो उसके बन्धनों से तुरन्त मुक्त होना चाहिए। ऐसों के लिए समर्पजी ने कहा है

गृहस्थी को त्याग कर बरमार्च में  
घोष देगा यदि कोई,

भ्रुओं मरेगा सिद्धी भर  
 बबनाम दुर्बेबी परमार्यो ॥  
 प्रथम गृहस्त्री को बलाये  
 फिर परमाश को चरिताय कर  
 यहाँ न सुस्ती काम बेपी  
 बिबेदी जम के लिए ॥

गृहस्थ जीवन चार पुरुषार्थों का साधन-स्थान है। धर्म न  
 प्रयत्न करने विधिमुक्त विषयभोग भोगकर ही मोक्ष का द्वार  
 मुलता है। प्रयात् धर्म धर्म, काम और मोक्ष इन चारों मानवीय  
 प्रयत्नों का उपाजक बिना पुरुषार्थ न नहीं जाना। धर्म धर्म से  
 जन्म का प्रयास करें, प्रयत्न की इच्छा से उद्योग करें, काम  
 वागना की कृष्ण में जुट जाएँ प्रयत्न मोक्ष का नितन करें परन्तु  
 मात्र रणिए कि बिना पुरुषार्थ दिताने धर्म इन कार्यों में सफलता  
 नहीं प्राप्त कर सकत। पुरुषार्थ दिताने का मतलब यह नहीं है कि  
 धर्म कबल धर्मने शरीर-बल से उत्पन्न की शक्ति प्राप्त करें।  
 शक्ति की आवश्यकता तो सबत्र हानी ही है। परन्तु शरीर का  
 शान्ति-भाव विनाश ननाबल का धर्म धर्म धर्मशक्ति की भी  
 आवश्यकता होती है। सबसे प्रथम धर्म धर्म का समनकर  
 निमयता से धर्म का धर्म की आवश्यकता जाना है। धर्मके बाद  
 धर्म का ज्ञान समय सधर्म की मन्ताह मनी पढती है। एम धर्मपर  
 पर मोक्ष और माया के ज्ञान में वैमर्क धर्म की मन्ताह म हम  
 सधर्म का धर्म ज्ञान है। यदि सधर्म न धनुमार धर्म कमाएँगे तो  
 विधिमुक्त विषय भोगकर काम का मनुष्य बगन में भी मन्ताह  
 ता। काम-गमनाएँ फिर भी हमारे मन में विकृति का निमल

कर सकती हैं। परन्तु विधियुक्त भोग भोगन पर ही हम मोक्ष के अधिकारी बन सकते हैं। महत्त्व जो इन चारों पुस्तकों को शरीर मन और आत्मज्ञान से पाएगा वही गृहस्थ-जीवन के साधन का अधिकारी बन सकता है। घत मोक्ष के लिए गृहस्थ जीवन का साधन ही सर्वोपरि है, सबसाध्य है। इसी भूमिका के आधार पर मोक्ष की साधना करने वालों के लिए उभयजी कहते हैं—

जानाचो गृहस्थो व्यापे  
 ज्ञान पाकर बन कमाए  
 फिर गृहस्थी बसाए  
 सुख साधन के हित ॥

स्वयं को सुखे बतबर  
 दूसरों को सुखी बना,  
 सुख कृष्टाने का तापम  
 गृहस्थी जीवन विवेक का ॥

गृहस्थी में भोग भोगे  
 भोग से फिर अलिप्त रह,  
 मोक्ष का द्वार खुले तब  
 जब गृहस्थी के मार्ग से ॥

पिसाई का अम्यस्त बन  
 शरीर, मन और इन्द्रियों को,  
 अम्यका होमा बिक्रम  
 भर बार और समाज में ॥

गृहस्थी बसाए भोग बिकर  
 गृहस्थी पीड़ा लहते हूए

पाता है जनता में सार्वक्यता  
 योग चल वह विवेक से ॥

यह सत्य है कि घर-गृहस्थी चलाना कोई मामूली बात नहीं है। उसके लिए सतत दीर्घोद्योग और चतुराई की आवश्यकता होती है। परन्तु बिना चतुराई व दीर्घोद्योग से गृहस्थ-जीवन को सुली बनाने का प्रयास कोई करेगा तो वह पापी है—पाछड़ी है। यह न अपने-प्रापको इस-दगा में मुक्ती बना सकता है और न दूसरों को। गृहस्थों को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि ब्रह्मचर्य, व्रतप्रस्थ और संन्यासीधर्म की साधना गृहस्थों के कारण होती है। अतः उसे इन तीनों धार्मिकों की साधना गृहस्थों से ही करनी चाहिए। सो गृहस्थों में भद्रा सजग रहने के लिए समर्पणी कहते हैं

पति भेद को न जाने जब  
 पति कुच्छर जनता है तब  
 सो बिस्माते हैं नर नारी  
 गुपत के धर्माव में ॥  
 माती को बिदा करके  
 पति को कारण में घा,  
 लड़ेकर बुवातना को  
 देह को मन के पर से ॥

पतिव्रत लाग गृहस्थों में प्रज्ञान, प्रालम्ब और बुवातना के कारण सुगी महा हो पाठ। यदि गृहस्थ जीवन वसुपिठ हुआ तो चार धार्मिक भी वसुपिठ होत हैं और चार पुरुषार्थ विनयीत गति में पल्लव जीवन गद्य का मयनाग कर देत हैं। गृहस्थ जीवन को सुगी बनाना हा तो सबसे पहले मनुष्य को हमेशा के

लिए उद्योगरत रहना चाहिए। उद्योग को ही भगवान समझकर आराधना के रूप में उसे चलाना चाहिए। उद्योगी के घर श्रद्धा सिद्धियाँ अपनी सेवाएँ अर्पित करती हैं या उद्योग ही भगवान है। ये सनातन सिद्धान्त हैं जो इसी अर्थभेद को स्पष्ट करते हैं।

मत हमें डटकर उद्योग करने चाहिए, डटकर गृहस्थी को निमाना चाहिए। गृहस्थ जीवन से ऊबकर या भागकर झूटकारा पाना चार पुरुषार्थों को फाँसी के तख्ते पर लटकाना है चार आश्रमों को गाड़कर जीवन-वृद्ध को अपने हाथों उखाड़कर फेंक देना है।

यदि गृहस्थ-जीवन को हम ठीक तरह से बसा सकें तो सगुण अवस्था से निर्गुणत्व को भी पा सकेंगे। सगुण और निर्गुण के उपासकों के लिए भी गृहस्थ-जीवन एक सुन्दर साधन है। गृहस्थी को यथायोग्य चलाते हुए जो उसके सुख-दुःख से अलग रहता है वही विदेह अवस्था को यानी निगुण रूप को पा सकता है। अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति का साक्षात्कार भी गृहस्थ-जीवन से ही हो सकता है। प्रवृत्ति के बिना निवृत्ति का अभिलाषी बनना संभव नहीं होगा। यह भी सत्य है कि निवृत्ति का साधन मात्र प्रवृत्ति है। पुरुषार्थों को साधने के लिए, चार आश्रमों को चलाने के लिए अथवा निवृत्ति और प्रवृत्ति का साक्षात्कार करने के हेतु गृहस्थ-जीवन ही सच्चा साधन और संतोष का मात्र आधार है—यह समझती ने अनेक वचनों द्वारा स्पष्ट कर गृहस्थी के लिए अनन्तता को आगूत किया।

कर्म अकर्म की परछाई कर  
करते गृहस्थी जीवन,

जब सेवा में जागृत हुए  
 मोक्ष प्रद मंतीव का ॥

—रागबोध

गमयत्री न गृहस्थ भावन या बड़ा बड़ाकर माधवर जो  
 प्रास्ताहित किया है उसमें कुछ प्राणों का दामयाप के आधार  
 पर ही माममात्र उल्लस करन में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि  
 जीवन-वक्ष का पापण गृहस्थ जीवन पर ही प्रबलवित होता है ।  
 इसीलिए समयत्री न पुन-पुन गृहस्थी धम क पापन का आयह  
 किया । राजधम प्रथाधम मयासीधम वरुईधम स्त्रीधम  
 पुरुषधम धीर्यधम आदि धनक धर्मों का ग्योन गृहस्था धम हान  
 में उन धम धर्मों का उपाजन करन में हनु गृहस्थ जीवन का  
 माकार एक ठोप रूप के रना पाहसु ये । इनक धनिगिन गृहस्था  
 धम क कारण उन सां मदगुणा को पापण मिलता है जा मानव  
 जीवन क विर परम प्राक्षयक है । गवा त्याग परपीडा विवारण  
 वाग्गति गुदता गहनगोपता प्राणि जो भी सदगुण मनुष्यों म  
 धाम करत है उनका प्रत्यय धन गृहस्थ-जीवन में ही होता है ।

यत्रि पाप्याय जीवन भीतिर दृष्टि म मरन्त परन्तु  
 गृहस्था क प्राण म वधित होने क कारण धरवा बृहस्थी  
 धम क प्राणों का न जानन में बह भाग्यीय जीवन में ना लपिक  
 गहृ म म का अनुभव करना है धीर मग को बड़ा उद्वेग क गित  
 भाग्यीय गम्यता मागर म दुर्दृष्टियों लगता है । यह ना मय है  
 कि भीतिर मा प्रवृत्ति म माधना म हम यतिर है छिद्र भा धन  
 जीवन का गाय धन धार गिय हम उस परिनाथ करत है ।  
 इनका मुख्य कारण धनर नाई होगा ना यह गृहस्थ जीवन ही है ।

गृहस्थ-जीवन के कारण पड़रिपुष्टों को हम अपने साथी बना लेते हैं। फिर हमारा गृहस्थ जीवन इफाई के रूप में प्रथवा सकुचित मानना से क्यों न पुष्ट हो। परन्तु पाश्चात्य जीवन पड़रिपुष्टों के साथीन होकर सवनाश की रूपों को अपने-आप फैलाता है।

‘भूखे भजन न होय गुपाला’ यह कवीरदासजी का वचन गृहस्थी-धर्म के रूप को ही स्पष्ट करता है। प्रथवा “बीभो घोर जीने दो यह साम्यवादी सिद्धांत भी इस जीवन के योग को स्पष्ट करता है। मतसब जीवन-वृक्ष की जड़ गृहस्थ-जीवन है और उसके भरण-पोषण से ही जीवन-वृक्ष फलने-फूलने वाला है। इस भावार्थ को अपने सामने रखकर समर्थजी ने गृहस्थी-धर्म का प्राग्रह किया है।

उन्होंने यह भी कहा है कि डरपोक तंगविल, स्वार्थी, कमजोर बुद्धि और क्षतिहीन भोग इस धर्म का पालन करने में असमर्थ हैं। यदि जीवन-वृक्ष का भार इनके जिम्मे सौंपा गया तो वह निषधव ही बह जाएगा।

यह माना जाता है कि मनुष्य सर्वशक्ति-सम्पन्न है। वह स्वयं भगवान से भी होड़ समाने में घानाकानी नहीं करता। और कई बार यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्य ने भगवान को भी पराजित किया है। इस प्रबन्ध में प्राज्ञ का ससार बुझी और पीड़ित क्यों है? समर्थजी धतसाते हैं गृहस्थ-जीवन के प्रभाव से—भोग से त्याग और त्याग का भोग न जानन से।

### अनेकांगी कर्म-साधना

यह स्पष्ट हो चुका है कि समर्थजी ने जीवन-पथो प्रत्येक

कम की साधना का जिज्ञासा किया है। इतना ही नहीं अपितु प्रमुख कम-साधनाओं का विस्तृत विवेचन भी किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि कम की हर तरह तक वे पहुँचें। व्यक्ति या राष्ट्रीय जीवन में वह किस प्रकार साधक बन सकती है इस बात का उन्होंने अभ्यास किया था। अतएव कम-साधना से पोषित मनुष्य के स्वाभाविक कम के पास्त्रीय रूप का अनुसंधान कर उन्होंने 'दासबोध' में इस बात का विवरण उपस्थित किया है कि व्यक्ति तथा समाज के दैनिक जीवन में वह किस रूप में पोषक बनगा। मुख्य रूप से सद्प्रवृत्तियों को अपना कर असद् प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने के लिए सामाजिक, धार्मिक और राजनतिक क्षेत्र में वे प्रयत्न करते रहें। इसलिए इन तीन विषयों की कम-साधना का मुख्य रूप से उन्होंने जिज्ञासा किया है जिसका परिषय मात्र इन प्रात्मचरित्र में इतस्तुत प्राप्त पा सकते हैं।

समयश्री ने कम-साधना को मुख्य रूप से यह कहा है कि जो जिस क्षेत्र में और जो काम करता है उसका यह बतव्य है कि उस काम की और उस क्षेत्र की वह संपूर्ण जानकारी प्राप्त करे। अपने नियोजित कार्य में प्रयोजनता सिद्धाण। नियोजित कार्य में घाने वाली घड़घनों को घय के माय यती मुक्ति स दूर कर। घाने कार्य का घनिमान न करे और उसे सफल बनाने में ही जीवन की साधकता अनुभव कर। घाने कार्य में किसी का घाटा न पहुँचाए वरन् यह कार्य समाज जीवन को घघिनाधिघ पोषण देने वाला मिद्ध हो इस बात का घ्यान रहे। कार्य-साधना में घाने और बीधि को जुटाकर उसे "इत् न भम्" की भावना में समाज या राष्ट्र के कार्य में लगाए। यत्न घय या जाति का कार्य



साधना के क्षेत्र में स्वाम न दे। अपितु हर काय से धर्म समाज या राष्ट्र को पापण मिलता है इस भावना से उसकी घोर दसकर कर्म-हित और समन्वय का क्षेत्र बढ़ाये।

कर्म-साधना के शास्त्रीय रूप का बिस्तारपूर्वक विवेचन समयजी ने इसलिये किया था कि उन दिनों में (और लगभग आज भी) कर्म-साधना दूषित हो गई थी। कार्यमर्यादा और काय क्षमता को लोग भूल गए थे। सबत्र दुगुणों का घोर घनाधार का साम्राज्य फैल गया था। इस दुरावस्था को देख समयजी ने उस पर भी करारा व्यग किया है। स्वभाव के अनुस्य कार्य उसके गुणधर्म और उससे होने वाली लाभ-हानि का हिसाब-किताब दर्शाकर उन्होंने सदप्रवृत्तियों को सत्रिय किया है। समयजी के उन मुख्य सूत्रों की विवेचना विषय के अनुसार उन्हीं के वचनों के आधार पर यद्यपि की गई है फिर भी 'वासबोध' के कुछ वचनों को यहाँ पर भी दिया गया है, जिनसे घनेकामी धर्म-साधना में किस प्रकार उन्होंने ठोस योग दिया था यह बात स्पष्ट होगी।

### रामचम

धर्म इोही राष्ट्र इोही  
 नारदी कुत्ते बगते हैं,  
 मार भयाघो उन सबको  
 भारत हित को इोही हैं ॥  
 मनुष्यों की परस जाने  
 योग्यता से काम से  
 निकामी भी कुदाले  
 काम घाते हर नहीं ॥

होनहारों को जुटा कर  
 काम साथ हितमिताकर  
 मरित पुत्रिन से बटालर  
 राजनीति पम के हिन ॥  
 मुख्य मुद्र को पारण कर  
 काम साथ दुमगों में  
 पल कामियों से क्या  
 सेवा करे जनाहन का ।

यागपद

यह जस उठने पर  
 बिस्ताने हैं त्रिम प्रकार  
 भोगों को दुरगटा कर  
 बुझाने पाय त्रिम प्रकार ।  
 छोट निवर्तित के लिए  
 घातक मचाये हृदय में  
 गृहस्था घरे ही उत्तमज को  
 मनमार्ग धोर मापमान ॥

शुभपद

देहमंग भोग देहमंग रोग  
 देहमंग घोष मापनों का ॥

बदपद

देह पम हूँ त्रिम पुग म  
 न्य ज्ञानि तर बगोंकर ?  
 बाह्य हूँ अत्राय भी  
 पम काय बने बगोंकर ॥  
 बाह्य घाबरे ज्ञान पम  
 घाबरे क्षाय क्षाय पम

बंध्य दूध प्राचरे स्वयम  
 शैल हित-जीवन-साधना ॥

### क्षेत्रधर्म

जो भय जाता है मृत्यु से  
 वह क्षात्र धर्म से मुँह पीड़  
 जीवन बलाए जयोग स  
 कित्ती हीम प्रकार का ॥  
 मारे मरे या काम प्राए  
 सार्धक करे साधना को  
 ऐह्यय भोगी मोघ का  
 क्षात्र धर्म प्राचार से ॥

### समाजधर्म

करने पर सब कुछ धमता है  
 पहुँसे सदा करते रूहो  
 बिल से चाहोगे जो कल  
 यत्न के बल पा सकोगे ॥  
 विवेक को धर्मि मान  
 भङ्गकायो उसे रात दिन  
 भङ्गकामे पर ही भङ्गता है  
 विवेक को विवेक से ॥  
 भक्ति से राज्य भी पायो  
 मुक्ति से बलाना जानो  
 शक्ति-मुक्ति बड़ी होती  
 बड़ी मुक्ति बिराजती ॥

### गृहस्थी धर्म

गृहस्थी बलाए सफलता से  
 विवेक से परमाच धाम

लोपों का उदय तोय पाए,  
पर पृथ्वी के घम से ॥

शाल मानसपत्र

बालों में रहे दिन रात  
सेमे बूदे समय माय  
घानद पात्रोये दुधिता का  
भगवान-ता समय का ॥  
पन में लठ पन में भयङ्क  
फिर स्नेह का बाँध फूट  
घाम्ब रूप बने तरलज  
राग लोभ वितार के ॥

धर्मशास्त्र

(महाराष्ट्र की स्वतंत्रता के बाद)

मारे जानी डूब गए, बस पारे जो हिन्दुस्थान में  
घानम्ब बन मुक्कन में घब घमनों का लय हुआ  
एसे लड़ के मर गए, जिने जाये के इकर उबर  
घानम्ब बन मुक्कन में घब लक्क घानम्ब टा गया।

निमाकशास्त्र

एने महरि घोर जिपर, उँके लोनुर ब मुन्दर  
बाँध तागाब घोर महरें, एपान यह ब बीघारे  
बाकदलामे बायदारगाने मरेंब रँने बाखलाने  
सँदर मरिरे लम्बर बित्र घी नाटकगाना—

भवापलशास्त्र

मो घोर की लम्बी ईट लान घोर चौड़ाई से  
ऊँचाई हो तोर घोर होतो घोर लवानता  
बकर ऐन बिमकुल न हो भँजाई में हीन न हो  
मोद न बोड़ी घोर जिन्दा, मरिद इट प्रजाप हो

कष्ट न पहुँचाए कारीगर को काम और को डंटें लूब  
 शरित जानकर काम करवाये बार बार डंट कभी नहीं।

### भारतीय संत और रामबास

भारतवर्ष में जो भी छोटे-बड़े मठ हुए हैं वे मय किमी विधिष्ट पथ में और मगुण या निगुण की उपासना करने वाले हैं। यद्यपि अम तब कम माग का अनुकरण उन्होंने किया और कम माग का महत्त्व भी समझाते रहे परन्तु कम माग का प्रायःहूप्रथम प्रतिपादन उन्होंने नहीं किया और निवृत्तिमाग का ही प्रवचन करते रहे। वे चाहे गौतम बुद्ध या मुत्समीदास या अथवा सूरदास या नामदेव हों। विशेषकर प्रायःहूप्रथम गृहस्थी धर्म का पालन करने की सलाह किमी भी संत ने नहीं दी है। परन्तु रामबास इस गलतानुगतिक निवृत्तिमाग की परिपाटी में विकसित हुए। उन्होंने गृहस्थ-जीवन को सर्वश्रेष्ठ मान उमके खरिसार्थ की मन्त्रिस्वर दिशा दिखायी। साथ ही साथ निवृत्ति का आदर्श का परिपालन भी उन्होंने परमावश्यक माना और निवृत्ति योग की साधना का भी सविस्तर उल्लेख किया। इसीलिए तो समकालीन साधु-गुरु स समर्थजी सहकार्य पाते रहे और ध्यान भी संत संप्रदाय में समथ सम्प्रदाय की और आन्तर की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु हजारों वर्षों से निवृत्ति का ही पोषण संत-मंडली के द्वारा होने से कम साधना का क्षेत्र में भारतीय समाज अक्षय रहा। व्यक्ति और राष्ट्र के सम्बन्ध को जोड़ने वाली कम-साधना की जड़ों को यह बाध न सके। परिणामस्वरूप जड़ों की एक-एक कड़ी ढल गयी गयी और धीरे-धीरे यह टूट-सी गई। पर हमारे सद्भाग्य से आज कम के भारतीय दार्शनिक साहित्यिक और नेता भी पुन इस दृष्टी

पूरा ज़मीर को ग्राहने का प्रयास में जट गण हैं। व्यक्ति हो या परिवार हा देश का प्रतिनिध भग है और देश का जेम्की निरता करना चाहिए। व्यक्ति या परिवार भी इस ध्यान का महसूस करने लगा है कि देश या समाज का कारण हमारा अस्तित्व टिका हुआ है। व्यक्ति का सुख-दुःख समाज सुखी या दुःखी बनने का अनुभव कर रहा है और समाज का सुख दुःख को देख उसका नियंत्रण में व्यक्ति प्रयास कर रहा है। व्यक्ति और समाज का यह घावमी सम्बन्ध जागृत धर्म का आदेश है और इसी आदेश पर समाजों ने अपना याग भारतीय जीवन का प्रदान किया जिसका देश का ना यज्ञ मुक्ति में साधु-सुता की प्रवृत्ति में पाया जाता है। यन्त्रुत यह हमारा आदेश है और यही समाज-जीवन का भरण पोषण करने हैं। साधु-सुता की शक्ति यदि राम-भाषना में एक गर्भ तो निदरव्य ही निवृत्ति का माय प्रवृत्ति का क्षेत्र में हम अपने धर्म्युत्थ को मापेंगे। समाज सम्प्रदाय का लिए यह गौरव की ध्यान है कि समाजों का आदेश पर भारतीय जीवन धर्म स्थित होना रहा है।

निवृत्तिमार्गी मना में महसूस जीवन का साधु-भाषना का आदेशपूर्वक याग क्यों नहीं किया है यह विषय स्थान का धर्मात्मक स्पष्ट करने महत्त्व धर्ममय है। और यह बात स्थित सिद्ध भी है कि गुरुमय-जीवन को ही निवृत्तिमार्ग का रास्ता मानते हैं और राम नाम का उदाहरण करके पर भी गुरुमयी में मूढ़ मादर उद्ध न निवृत्ति को दास्यता दी। अन्त उदाहरण दास्यता का विषय स्पष्ट करना धर्म्युत्थ तब धारण है। धर्म्युत्थ में साधु-देने वाला शान का कारण समाज उन्नत मान किया जाता है।

दामजी क ये वचन भारतीय सती श्रीर रामदास में कीमसा मौलिक मेव था इस बात का अनायास स्पष्ट करेगे । समथजी कम-साधकों के लिए कहते हैं

दुष्टों के लिए दुष्ट भूने  
 बकवासों के लिए बकवास,  
 स्वयं नो बचते रहें  
 बिरुद्यों से आक्षेपों से ॥  
 कटि को निकाले कटि से  
 पता न जाने बिचि का  
 प्रपस्या भी पहचान सब  
 जिसकी उठे होमै दे ॥  
 जो भरोसा करता है दूसरों पर  
 वह डूबता है कार्य को सेकर  
 जो स्वयं मेहनत उठाता है  
 वही घट पाता हर कहीं ॥  
 मुख्य धुत्र को धुत्र संबारे  
 काम साथ दूसरों से,  
 पट्टार कर धनेकों का  
 राजनीति न धर्मनीति के ॥  
 दुष्टों का दुष्टत्व उनारे  
 पीसे भूने यथा बिचि  
 पर याद रहे हर समय  
 संबारे उसे डूबनी न दे ॥  
 भीड़ जमड़ाए हर कहीं  
 कार्य के धाक्यव से  
 पर याद रहे पर कार्य का  
 धीक न घाए धर्म पर ॥

समयजी क य वचन कर्म-साधना और धर्म-साधना के यथार्थ रूप भेद को स्पष्ट करते हैं और साध-साध समयजी और धर्म सगों क मोलिक भेदों को भी स्पष्ट करते हैं। प्रत विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

इन वचनों से यह स्पष्ट होता है कि धर्मनीति से कर्म-साधना को आचरण रहें फिर चाहे वे अर्थ हों या बुरे हों। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि हमारा धर्म धर्म की भिन्न पर आधारित हो। धर्महित के लिए साम दाम दण्ड भेद का अनुसरण धर्म के साध-साध जीवन के लिए भी परम आवश्यक होने से यह नीति पथानिक नहीं है। भारतीय मत इस आदर्श को नहीं मानते हैं। समयजी इसके आग्रही हैं।



## युद्धकाण्ड की भूमिका

समर्थजी स्वयं का प्रभु रामचन्द्रजी का दास कहलाते थे और यह उपाधि उन्होंने स्वयं पाई थी। ऐसा कहा जाता है कि रात एकनाथ का घघुरा बाय पूरा करने के लिए भी समर्थजी ने काम धारण किया था। जिस प्रकार भगवद्गीता का भाष्य रामायण में पाया जाता है उसी प्रकार रामायण का भाष्य एकनाथी भागवत में पाया जाता है। मत्त एकनाथ महाराष्ट्र के सत शिरोमणि थे। जिसका पथ धाम भी महाराष्ट्र में बड़ प्रमाण में स्थित है। समर्थ के पूर एकनाथजी ने अपनी जीवन-श्रीला समाप्त की 'एकनाथी भागवत ग्रंथ का युद्धकाण्ड वे लिखकर पूरा न कर सके थे। अतः उस युद्धकाण्ड को समर्थजी ने अपने 'दासबोध' द्वारा पूर्ण किया। इतना ही नहीं उस युद्धकाण्ड के अनुसार राज्यसाधना में उन्होंने स्वयं योग भी दिया। समर्थजी का सिद्धा हुआ दासबोध मानो युद्धकाण्ड का ही रूप है। रामायण को संपूर्ण है। एकनाथी भागवत की पूर्ति है।

मानसिक सामाजिक राजनतिक अथवा धार्मिक रुढ़ प्रवृत्तियों से उन्होंने स्वयं मुक्त किया और अपने सम्प्रदाय के द्वारा अपने दिव्यों से उन पर विजय भी पाई। मानसिक पराधीन प्रवृत्ति को दूर हटाकर उसे स्वाधीन अस्तित्वाली बनाने के लिए समर्थजी ने अपने समाज को शिक्षा दी। उन्हें मन को समर्थ बनाने का मार्ग दिखाया। सामाजिक पराधीनता दूर करने के लिए समाज

धारणा का स्वरूप में ग्राममूल्य परिवर्तन किया। समाज की वज्र गत कहने को मिटाकर हिन्दू समाज को नये मरे में गड़ा। राज नतिक परगधीनता को दूर करने के लिए स्वराज्य का प्रस्थापना कराई। और धार्मिक स्वाधीनता के लिए स्वराज्य का आश्रय पाया।

(१) मन की दुकाना के लिए धार्मिक शक्ति संपादन करने उसे कुशासनियों से मुक्त और विगुण बनाने के लिए मवाधम की दीगा दी और आत्मरूप दिनाकर निभय बनाया। मनोबोध की रचना समसजी न मानसिक प्रवस्था का लक्ष्य करने ही की है।

(२) समाज का शक्तिमय बनाने के लिए बणगत बण गत और पंथगत विद्रोह का दूर कर समस्त हिन्दुधर्म में सामंजस्य स्थापित किया। धर्म के विगुण मन का स्पष्ट कर लाने प्रकृत के भद्र को नष्ट किया। जिसके उपयोग में समसजी न लक्ष्य होने से जो जान प्राप्त किया उस विषय कर लाने उन्हीं बतलाया

(क) जिसकी युद्ध क्षुद्र नहीं है धर्मितु विचार है वह गुण है। (ग) जो धर्म का अधिपति है और धर्म के म उग धर्म का—उस स्थान में रहने वाले सभी जीवों का रक्षा करता है वह धर्मितु है। (ग) जो धर्मों द्वारा का विषमता धर्म काग पटलन भी नहीं बना है वह धर्मितु है। और (घ) जो धर्म का—धर्म के—जान का प्राप्त कर मन्त्रितु धर्म रक्षा है वह धर्मितु है।

समाज धारणा के द्वार में समसजी का यह नि गन्धेधा हिन्दू समाज का गडा के लिए जीवनशायी सिद्ध होगा।

(३) राजनैतिक पराधीनता के कारण हिन्दू जाति सभी प्रकार के मननित ग्रन्थाधारों से पोषित हुई थी वह पराधीनता प्रायः रहती है। हिन्दू जाति का स्वाधीन धनाम के लिए समर्थजी ने स्वराज्य की प्रतिष्ठापना की। स्वराज्य के बिना स्वाधीनता की रक्षा नामुमकिन है इसलिए अपनी सारी शक्तियाँ स्वराज्य के काय में भगा दी। धर्म प्रचार के लिए बितने भी मठ महत और शिष्यों का जुटाया था उन सबको धर्म की रक्षा स्वराज्य के बिना न होमी यह उपदेश देकर युक्ति प्रयुक्ति से स्वराज्य के काम में भगा लिया।

(४) धार्मिक स्वतंत्रता निर्बंधयुक्त भम ही हो पर निर्बंध के बिना उसके परिणाम से मनुष्य वंचित रहता है इसलिए धार्मिक क्षेत्र में भी उन्होंने साम्राज्य निर्माण किया। 'मन भगा तो कठौती में गमा' इस मानसिक भावों का प्रत्यक्ष में जब तक नहीं देसा जाता है तब तक व मन ही मन उठते रहेंगे और फिर बिलीन भी होंगे इसलिए केवल भावनाधीन न रहकर अपने भंगल भावों का प्रत्यक्ष में देखने के लिए धर्मधारित स्वराज्य की प्रतिष्ठापना समर्थजी ने करवायी। उसके लिए और तपस्या की, पेश पयटन की तकलीफें उठायी और वीर्य प्रयत्नों से समाज के विभिन्न क्षेत्रों को धर्म और सम्प्रदायों को, स्वराज्य के काय में जुटा दिया।

इस प्रकार राज्य साधना कर अपना जीवित काय युद्ध कांड के रूप को दिखा—'दासबोध' निस्तकर पूरा किया।

धीरोत्तम में भवित है  
जो करता है वह पाता है

मात्र घण्टान भयवान का  
 करने पर होने पर ॥  
 ममवान को तिर पर धारण कर  
 हससस मचाए हर कहीं  
 देग डूबे या तरे  
 प्रतिबल धम हिन से ॥

—दामयोप

मतलब मानसिक तगनशरी का हटान के लिए समझी तग  
 गिन बाकों से सहे । उन्हें विगाल दृष्टिबोध दिया । धामिष  
 मामप्रदाविबता म सद्दकर मप्रणायों में मल बचाया । मामात्रिक  
 बण धयबा धग-गत बल्ह मे सद्दकर ममात्र में ममानसा निमाण  
 की । हर किसी प्रवृत्ति से जो धम ममात्र देग एक उनकी मपभी  
 म्नामाविक त्रिनपो प्रबलित का विगध करती थी ममधजी निर  
 म्ना नहने ही रहे । बौद्धिक मामात्रिक मानसिक धामिन धौर  
 गत्रननिक प्राति कर माना उन्होंने हर कहीं मुद्रधेत्र ही बना  
 लिया । परन्तु मुद्रधेत्र का निर्माण करना धौर बात है धौर मुद्र  
 धेत्र बन जाने पर उपयुक्त माधन मामली जुटाकर उग मुद्रधेत्र में  
 मपन्नातूबक यग पाना धौर बात है । धादमय को बात है कि  
 ममधजी इन मभा धेत्रा क मुद्रा म मपन् बने । उन मुद्रधेत्रा का  
 धौर प्रत्यक्ष मुद्रनीति का परिषय दामयोप के द्वारा हा हो मबत्रा  
 १ । यहाँ बेबल मदन का दान मात्र है ।

## राज्य-साधना

समथजी का जीवन भरिष ऐतिहासिक दृष्टि से राज्य साधना में एक विशेष महत्त्व का स्थान रखता है, जो राजनैतिक क्षेत्र में सदा के लिए प्रेरक बन सकता है, परन्तु यह पूर्णतया हमारी धारणा और क्षमता पर ध्वस्तबिस्त है। क्या ही अच्छा होता यदि समथजी की राज्य-साधना का सम्पूर्ण विवेचन हमें उपलब्ध होता। सम्प्रति पुरानी टिप्पणियों, प्राधुनिक एवं पुरानी चरित्र-कथाओं और 'दासबोध' के आधार पर ही इस विषय को स्पष्ट कर संतोष पाना हमारे लिए गौरवपूर्ण है।

पाठकों को यह स्मरण होगा कि धानु के बारहवें वर्ष में समथजी न प्रभु रामचन्द्रजी से साक्षात्कार किया और स्वराज्य एवं स्वधर्म की रक्षा का आदेश पाया। इसके बाद नासिक में तपस्या के क्रमसर पर पुनः एक बार साक्षात्कार हुआ और समथजी ने रामचन्द्रजी के द्वारा 'दास' की उपाधि पाई। इन्हीं दिनों हिन्दू धर्म प्रेमी शाहाजी राजा भोंसले समर्थजी से मिले और उनके द्वारा शिवाजी राजा स्वतंत्र वातावरण में खिळा पा रहे हैं। इस समाचार को भी उन्होंने जान लिया। हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की ध्वनति को वे देख चुके थे और उन्हें मन ही मन यह विश्वास हो गया था कि क्षत्रिय-कुल में इसकी तारक शक्ति पैदा होगी। अपने इस आत्मानुभव के कारण १२ वर्ष की छोटी तपस्या पूरा करके

समझती ने १० वय भारत में भ्रमण किया। जिससे गिवाजी राजा कुछ बड़ हुए घोर यथोचित स्थिति को जानकर उनका उपायों का भी आयोजन समझती कर मके।

समझती ने अनुभव किया कि मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू जाति वन्त है। माप ही साथ उन्होंने इस बात का भी अनुभव किया कि स्वयं हिन्दू जाति भी नविक धार्मिक और भाषण की दृष्टि में गिर गई है। इस अवस्था में धार्मिकता और भाषणमत्ति का पर्याप्त मात्रा में जुटाता अनियाय बतल्य था। इस दोनों अवस्थाओं का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही समझती ने उन उपायों को चुना और हजारों की मर्या में मर मरत और गिवाजी का उपायकर हिन्दुओं की धार्मिक गति का जगया तथा उन राज-भाषना की दिशा में मोड़ दिया।

जब गिवाजी राजा बट हुए तब गिवाजी राजा भोंसले का भाग्य के अनुसार ये समझती ने अपने बाद गिवाजीवादी के जाते म मन् १६७१ म दिन। उनकी वधार्थक भूमिका पूरा म म समझती के धार्मिकानुसार पापित हुई थी। अनौचित्य समझती ने उन अनुभव देख यह मलाह दी कि तुम्हारे गिवाजी धार्मिक गिवाजी म मने हा नीकर हा पम्नु तुम अरना जागर में स्तत्र हा। अर जागर के धार्मिकानुसार का प्रति धार्मिकता म अरन करके में मना गालोग तो मैं गुरा मलायता प्रगत बन्ना। धर्म के नाम पर मेरे गिवाजी मन् मलागटु में गिवाजी है व मर तुम्हारी मलायता करके। धार्मिक धार्मिकानुसार तुम पर नाराज होत। पर उगी को मलाह का अरना कर राज-भाषना म तुम मग जाया। अरनु अर मला उदाग पुत्र अर म मरके बन्ना होत। धार्मिक

इस उद्योग से मुझे भयंकर सक्नों का भी मुकाबला करना पड़ा। यदि साबधानी से नमोगे तो निश्चय ही धम की रक्षा करने के लिए स्वर्गाय मन्दिर को उभारा जा सकता है।



शिवाजी को अनुग्रह—धर्मबल पापे क हेतु राख्यछता राज्य  
को धमय बनाने के लिए धर्मछता की छरण में।

समर्थजी के इस अनुग्रह को पाकर शिवाजी राजा स्वराज्य की स्थापना में जुट गए। उन्होंने मध्य प्रदेश अपने गिरे पुने पर दरसाली मित्रों की सहायता से जावळी और रायरी के घाबिरुवाही किलों पर घाक्रमण किया। इनके बाद पुरन्दर और धनन्तर घमक

किस घपन कर में कर लिए ।

जब इस बात का पता घादियागारी को लगा तब गहाजी राजा भोंसम को उन्होंने बन् कर लिया । परन्तु ममपजी के प्रताप से घघवा प्रसार म बीजापुर तक यह समाचार फैला गया कि गिवाजी राजा घम्राप हैं मा उन्हे धमा कर दिया जाए । यह बात उन हिन्दू पदाधिकारियों म पिया जिन्हें ममपजी ने पहल ही निय्य बना लिया था । बीजापुर के दरबार में जब यह घटना पर विचार हुआ तब घनत गहाजी राजा मामले को मुक्त किया गया ।

जब गिवाजी राजा न दूमर बिलों का घपन घाघोन कर लिया तब घादियागारी का उन्ही घविशगियों द्वारा दम बान पर मनोपिन किया गया कि घाप ही को नन्ट व पित गिवाजी राजा यह सब कुछ करने हैं । घयान् यह याचना भी ममपजी की गलाह म गलाह थी । यह प्रकार घनत बिल पर घाना घपिहार कर लने पर ममपजी ने गिवाजी को गानाभिषेक करन की मलाह ली । यह मलाह व घनुमार मनु १६७६ म गिवाजी



स्वराज्य स्थापना का यह सारा उद्योग पूर्णरूप से समर्थजी की सलाह से हुआ था। यही नहीं हर छोटी-बड़ी समस्या के घबसर पर शिवाजी राजा समर्थजी से मिलसके भी थे। शक्तिसम्पन्न अफजलखान का वध किस प्रकार कैसे किया जाय इसकी संदिग्ध सूचनाएँ समर्थजी ने उन्हें दी थीं। घम के कारण देश को बरबाद भी किया गया तो वह सत्कर्म बनेगा समर्थजी की इस चेतावनी का यथोचित परिणाम हुआ। इन सभी ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तृत विवरण शिवाजी के चरित्रों में पाया जाता है। परन्तु बड़े छेद की बात है कि इन सारे महाप्रयासों में समर्थजी किस प्रकार और कैसे हाथ बटाते रहे इस बात का ठोस प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी कर्नाटक से मुक्त होकर शहाजी राजा मौसले का समर्थजी से सन् १६७१ में मिलना राज्य स्थापना के घबसर पर समर्थजी को धार्मिक करना और समर्थजी का हार्दिक आशीर्षक भेजना अफजलखान वध के घबसर पर समर्थजी का पास-पड़ोस में रहना गुडवार के दिन प्रति सप्ताह समर्थजी से मिलकर शिवाजी राजा का आज्ञा पात्रा और चेतावनी देने के हेतु शिवाजी राजा को समर्थजी के द्वारा बार-बार पत्र लिखना आदि घनेक घटनाओं से तथा 'दासबोध' के आभार पर यह स्पष्ट होता है कि समर्थजी ने अपनी सारी शक्ति स्वराज्य-स्थापना के लिए शिवाजी राजा को सौंप दी थी और समय प्रसमय बचने-बचाने और शत्रु-दल को मारने तथा पराजित करने की सलाह भी वे देते रहे। यही कारण है कि शिवाजी राजा ने सपूरा राज्य का दाम समर्थजी की सेवा में कर दिया। शिवाहू के घबसर पर भी जो धामूपण पहले थे वे भी शिवाजी ने समर्थजी को भेंट में

बड़ाए। ममयत्री ने उन सबको लौटा दिया क्योंकि उनका मृत्यु घम मापना था। इन्कोलिंग निवासी के द्वारा मठों, महुँतों का परिनाय पणन के लिए जो १०१ गाँव इनाम में लिए गए थे उनमें से बस ३३ गाँवों का प्रोकार किया गया और दोष सौटाए गए।

ऐसा माना जाता है कि राजकाज में मन्नाह-मगविरे की अधिक आवश्यकता होती है और यह मही भी है। इन्कोलिंग तो ममयत्री मंत्रण रहकर पूरे ५० वर्ष यानी मन् १६८० तक जबकि निवासा की मृत्यु हुई तबसे महाराष्ट्र राज्य में मन्नाह-मगविरे का काम करते रहे। घम-मापना का प्रारम्भ स्थिर करने के लिए उमर उचित मोड़ की बिम्बा करनी चाहिए और राज्य-मापना के बन् उमर म्याया रूप रना चाहिए, इस बात का प्रमाण ममयत्री का मरुण जीवन परित्र है। माप ही माप यह भी मर्य है कि घम-मापना मतक से काम सना पटना है उसमें भी परामश की आवश्यकता होती है। इन दोनों मापनाधा में ममयत्री ने जो योग प्रदान किया है वह निश्चय ही जीवमन्नापी है।

ममयत्री ने दुष्टा का नङ्कार कराया, वह साहे घम धर्मोय है। घमबा स्वधर्मोय है—इस बात का सबसे महन्वृण प्रमाण चन्द्रराय मोर का है। जब ममयत्री को इस बात का पता चला कि गन्तराव मारे स्वधम और स्वराज्य के बिना से घानिन्नाही के प्रत्याभोगे मसा का पनराती है तब मुरम्भ निवासी राजा के द्वारा उन्होंने उमका वध करवाया।

घममसा की रिजयता को स्पष्ट करने के लिए रामनामत्री के आबत से एक महन्वृण पटना हुई है जो बड़ा बापना है।

जब सिवाजी राजा का राज्यसत्ता का अभिमान हुआ और वे एक बार बड़े गर्व के साथ समर्थजी से मिलने आए तब बात-बात में समर्थजी ने एक पत्थर को तुड़वाया और पत्थर में स्थित एक मेंढक को दिखाकर कहा 'भगवान समर्थी विस्ता करते हैं। वनो यह बेचारा पत्थर में बन्द था। भगवान ने इसके लिए पानी का भी प्रयत्न किया है जिससे यह अपना जीवन-यापन कर सके।'



सर्वसत्ता के लिए समर्थजी द्वारा सिवाजी का सर्वनिवारण  
समर्थजी का यह भाषण सुनकर सिवाजी राजा सन्नत हुए।  
उन्होंने अनुमत्त किया कि मैं जो यह समझ रहा था कि मैं महा

राष्ट्र का पालनहार हूँ—वह भ्रम है। मरा धर्मिमान बगना मूर्खता है। समपत्री के मर्कट का जानकर व ननमस्कर हुए और प्रयोग में अपनी भूल मानकर समपत्री से उन्हूँने क्षमा माँगी।

जिस प्रकार समपत्री ने राज्य-साधना के लिए योग दिया उसी प्रकार पिताजी राजा ने भी धर्म-साधना में योग दिया। हमें इस बात को कदापि नहीं भूलना चाहिए कि धर्म-साधना के लिए पर हाँ राज्य का साधना ही नहीं और वह भी विपरीत व्यवस्था में। एक ठाँ मयत्र मुसलमानों के शासन का मतमाना कारण था। आदिनाही के शासन में सारी प्रजा नयप्रसन्न थी। हिन्दुओं में धर्म धार्मिक पद से फिर व भी आचार छुट गया। जनता अकाल से पीड़ित थी। सब धर्म धार में सान स्वायत्त दूसरा ही सुराई चाहते थे बहादुरी सम्भवतः थी। दूसरा का उपदेश मुनाता विनाश बुद्धि का छोटक माना जाता था।

समपत्री ने इस सामाजिक व्यवस्था में भी धार्मिक परिवर्तन किया। पंढरों को पंढरों का साधारण प्रथम धर्म का पाठ पढ़ा कर मुँहनाट करवा दिया। निरधर्मताओं का धर्मशास्त्र का पालनदिन कर दिया और उसकी कल्पनाएँ हूँ 'समय' का भाग उन्हें दी। पुनर्जाति का उत्तर काय का उपनिषद् का भाग है यह समाजशास्त्र के मूल भाग सर्वज्ञानोत्तर द्वारा समझाया। नीति शास्त्र का प्रथम समपत्री का भगवत धर्म धर्म का धर्म के धर्मशास्त्र 'धर्म का विनयन कर उत्तम धर्म बनाया।

यह शास्त्र दीप उद्योग धर्म समपत्री ने किया और धर्म विद्या एक मर्कटों द्वारा कराया और इस तरह हिन्दू जनता का साहित्यिक रूप में रूपरुग्ण बनाया। यही वह विषय है जो

द्वारा क्रूर आदिलशाही और निजामशाही में भी अपने शिष्यों का जाल फैलाया। जिनमें निजामशाही के केसव स्वामी धाये चलकर समय सम्प्रदाय के महान धात्र्यदाता बने। अपने इस जाल से दोनों शाहियों से धर्म के नाम वर्षासन नियत कराकर भीत समाज को अपनी शक्ति का परिचय दिया। इस प्रकार समय और शक्ति का मेल बढ़ाकर समय को अपने स्वाधीन कर लिया। सब कहीं स्वराज्यसाधना में योग देने की सामर्थ्य समर्थजी पा सके। धार्मिक पाँच वर्षों में शिवाजी न सांस्कृतिक प्रेरणा व अपने बल-भरोसे पर तथा समर्थजी की सहायता से अपनेको किसे अपने अधिकार में कर लिए और स्वराज्य की नींव भी डाल दी। परन्तु इस छोटे धर्मक्षेत्र से महाराष्ट्र धर्म का बिस्तार बढ़ाकर हिन्दुओं का राज्य स्थापित करना असम्भव था। भारत का भ्रमण कर लेने से समर्थजी ने यह ज्ञान लिया था कि महाराष्ट्र की शक्ति ही हिन्दुस्थान में धर्म की स्थापना करने के वास्ते काम आ सकती है। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने मठों और शिष्यों का जाल सर्वत्र फैलाया था। परन्तु संपूर्ण महाराष्ट्र पर अधिकार जमाये बिना हिन्दू-मद-मातशाही की कल्पना करना भी व्यर्थ था। संपूर्ण मुस्लिम शासन पर धावा दोसकर विजय पाना तो असम्भव ही था। इस वधा में महाराष्ट्र की धार्मिक वैचारिक त्यागमय शक्तिशाली और संवेदनशील नीति के प्रचार-साधन को अपनाना ही समर्थजी के लिए प्राप्त कर्तव्य था। समर्थजी ने महाराष्ट्र राज्य या महाराष्ट्र धर्म का जो प्रयोग किया है वह प्राप्त हित की भावना को सदैव कर नहीं किया। 'दासबोध' ग्रंथ स्वतः यह सिद्ध करता है कि वे हिन्दुओं का राज्य इस देश में निर्माण करना चाहते

ये घोर महाराष्ट्र यानी ऊँचे स्तर वाले महाराष्ट्र धर्म की प्रतिष्ठा पना करना चाहते थे। महाराष्ट्र में पैदा होने के कारण स्वाभाविक ही महाराष्ट्र में यथाचित अनुकूलता प्राप्त होने की सम्भावना थी। घोर फिर महाराष्ट्र की भूमि भी इस काम के लिए अनुकूल थी।

जब आदिसत्ताहा या आक्रमण बढ़ा तब स्वाभाविक ही बास निवाजी पबराए। उन्हें घोरज बंधाते हुए समयत्री ने कहा—

जो दणित पात है उसे सुरक्षित करे,  
बहारा करे दणित का, महाराष्ट्र राज्य विस्तार।

एक घोर निवाजी की सहायता करना दूसरी घोर जनता में निवाजी के प्रति घटा घोर भक्ति जगाना—ये नानो काय समयत्री का माय-माय करने पड़ते थे। यह सारा उद्योग कुशल धर्मप्रेम घोर राष्ट्रप्रेम के रूप में हाता रहा। न निवाजी के पास किसी प्रकार का धन था न समयत्री के पास। यदि समयत्री राज्य साधना में योग न देत तो कल्पित उन जिनों में स्वराज्य की स्थापना भी न हो सकती। निवाजी के प्रति जनता में भक्तिभाव जगाने के हेतु समयत्री स्वयं शक्ति प्रसार कर वह बटते थे—

सकलजो ने हा मानो निवाजी के रूप में पबनार लिया है। उन पर कामोमाना प्रमत्त है। ये स्वयं घोर स्वराष्ट्र के लिए ही यह जीवन धारण किए हैं। अतः सत्ता रीति ने उनकी सहायता की जाए। उनकी आत्मा का मंगलान की कृपा समझे। स्वाभिमानपुत्र जीवन बिताने के लिए मुट्ट के गिरा घबकोर दूसरा साधन दीप करी रहा। पत्र के लिए दरवान का मारने में हा अब हमारा हृदय है। जो धन धान गता में भर्ती होकर पबनार उचित सहायता गत

कर शिवाजी की सहायता करें।”

धौरगजेब बहुत चासाब था। एक बार एक हिन्दू सरदार जयसिंह को शिवाजी के पास भेजकर किसी तरह उनको बंद में बंदन का प्रयास उसमें किया। धर्मात् शिवाजी को बहुत कुछ सासब भी दिखाया। जब इस विषय में शिवाजी ने समर्थजी से वार्तालाप किया तब समर्थजी ने स्पष्ट रूप से यह बतसाया कि हिन्दू धर्म और हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठापना में अगर जयसिंह मदद देता हो तो उसे राजा भी बनाओ। धर्मशास्त्रियों के विरुद्ध धर्म ग्रहण करने पर उसकी ताड़ना करा। उससे बहो—

स्नेह तुर्जम उद्बुध विनों से मचाए हूँ बलवा  
तो साहयान रहै बिन रात, धर्मब बप बमें हित।

धर्म में जयसिंह को सासी हाथ मोटते देख धौरगजेब चिढ़ गया। उसने एक बड़ी सेना के साथ समापति अफजलखान को भेजा अफजलखान स्वयं कुनास सेनानी और शक्तिशाली था। उसकी अगणित सेना के आग्रहण का समाचार सुन शिवाजी चिन्तित हुए पर समयको यह जानसे था कि जयसिंह को मोटाने पर धौरगजेब कोई बड़ा पड़वन्त्र रजगा। इसलिए उन्होंने उसके प्रतिकार को याचना भी बना रखी थी। जब समर्थजी ने उसक आगमन की वार्ता सुनी तब वे स्वयं शिवाजी के पास रायगढ़ पहुँचे। उन्हें देख शिवाजी को अप्रसन्न मानन्द हुआ। ब वामे 'महाराज मैं स्वयं धमी धमी माजाराकार के लिए आने वाला ही था। परन्तु इस कठिन अवसर पर आने को आपने बड़ी कृपा की।

समर्थजी बोले "मैं यह जानता हूँ राजा साहब। बबराहट के कारण सोच-विचार में तुमसे गसती होने की संभावना आम में





स्वयं घा निकसा । लेकिन याद रखो हर समय मैं तुमसे न मिस सकूंगा । इसलिये सबकी निष्ठा और बाळाजी भवजी (शिवाजी राजा के मंत्री) से परामर्श कर ल्या करो । ये दोनों भी समर्थ हैं । और फिर तुम जैसे का नेतृत्व भसा ये कहाँ पाएँगे । यह कहकर समर्थजी ने उन मंत्रियों से बाहर जाने के लिए कहा और वे एकाकी शिवाजी से मिले । समर्थजी ने कहा 'यह सत्य है कि किसी भी अवस्था में इस आक्रमण का प्रतिवाद हम नहीं कर सकते । अतः अफजलखान की प्रवृत्तियों को आम उससे मित्रता के माते मिसकर ही संयोग पाकर एकांत में उसका बंध करना होगा । उसका स्वागत में किसी प्रकार की आनाकानी न हो । यहाँ तक कि प्रत्यक्ष में मिसन के बाद 'उचित योजना सम्मत् करूँगा' यह भी उसे आश्वासन दो । याद रखो वह धसधाली है । प्रत्यक्ष में उससे मुकाबला नहीं कर सकोगे । घोड़े का मार्ग ही तुम्हारे लिए सुना है । उससे मिलते समय मुख्यबान बस्त्र पहनो जिससे वह अदाब लगाएगा कि तुम विसासी हो । जब उससे तनहाई में बातें होंगी तब मौका पाकर उसका पेट में अण्डस धुसेड़ देना । यदि तुम सफल न हो सके तो चारों ओर से उस पर धावा बोलने की तैयारी भी करनी होगी । प्रतापगढ़ की गोद इस कार्य के लिए उपयुक्त है । यदि बिजयी हुए तो सारा राष्ट्र तुम्हारे गुण पाएगा और पराजित हुए तो हमारे काम आओगे । नरवर जीवन की धिता छोड़ शास्वत जीवन को पाने के लिए अनु रामचन्द्रजी की कृपा से इसे सुप्रबसर ही मानो ।'

समर्थजी की सूचना के अनुसार शिवाजी ने अफजलखान का अण्डस धुसेड़ दे दिया । तब प्रसन्न होकर समर्थजी ने अपने हाथों धर्म देवता

मर्यादी माता की प्रतिष्ठापना प्रस्तापमङ्ग मे की ।

योजना कर यवन का बध कराया  
फिर चाफ़्फ़ लोभ का निर्माण हुआ :  
कुञ्जामर्यादी की प्रतिष्ठापना की  
प्रस्तापमङ्ग किति पर ।

—वासवोध

घोरयज्ञेय इसके पहले एक घोर घास खेल चुका था, तब शाहस्ताखान के द्वारा विवाह के अवसर पर शिवाजी को बड़े सम्मान के साथ आमन्त्रित किया गया था । विवाह खुद शाहस्ताखान का था और वह पूना में होने आ रहा था । शाहस्ताखान की यह योजना थी कि किसी भी रूप में शिवाजी को अपने आस में फँसा कर गिरफ्तार कर ले ।

इस विषय में जब शिवाजी समर्थजी से मिले तब समर्थजी ने बतलाया—प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा एस मौके ही अगर बार-बार आते रहें तो बहुत अच्छा होगा । क्योंकि महान सपना के लिए हम अभी तक तैयार नहीं हैं । इसलिए यह अवसर खोना हमारे लिए साम्बदायक न होगा । परन्तु याद रखो कोई विक्षेप हाथ न उठाना और अपने-आपको बधाकर भाग निकलना । कहीं जान में न घाना ।

इतिहास साक्षी है और वह मर्यादी भी पूना में मौजूद है जहाँ शिवाजी ने शाहस्ताखान की जंगलियों को काटा और उस पूना से भगा दिया । इसी घटना के संकेत में समर्थजी ने शिवाजी को जो सलाह दी वह 'वासवोध' में इस प्रकार अंकित है—

अनेकों को साथ लो एक जगह बिल बना लो  
ठिसलकर या सुदकर, कुचल दो बुष्ट लीचकों को ।

घोरंगजय ने जब यह देखा कि दिवाजी को भीतना घासान धान नहीं है तब उसने उनको घामन्वित किया । यद्यपि भागरा शत्रुदल का गह्वर था फिर भी योजनापूर्वक समयजी व परामर्श कर दिवाजी राजा भागरा गए और वहाँ से चकमा देकर निकल भी आए अर्थात् इस भीषण घोर महाम उद्योग में समयजी ने ही उनकी महायत्ना की । जब वे भागरे स लौटे तो जहाँ कहीं समयजी के शिष्य थे उनसे महायत्ना प्राप्त कर घोरंगजय की सलाह को घोर शासन का चकमा देते हुए महाराष्ट्र में सुरक्षित पहुँचे ।

इस प्रकार घनेकों घटनाएँ घटीं जो प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा भयंकर थी । इन घटनाओं का कारण ही अपनी शक्ति और वृद्धि के बल पर प्राणों की खाड़ी लगाते हुए दिवाजी राजा अपने काम में सफल बने । परिणामस्वरूप शक्तिशाली घोरंगजय भी पराजित हुआ । यदि प्रत्यक्ष युद्ध छिड़ता या मुस्लिम सेना से मुकाबला होता तो कदाचित् दिवाजी राजा पराजित हो जाते । यह स्पष्ट है कि इन सारे महाप्रयासों के सूत्रधार समयजी थे ।

जब फ्रांस में तुर्क सम्प्रदाय की आति ने मुसलमानों के समान ही घनन्वित अत्याचार किए थे तब समयजी के समान ही एक ईसाई भमगुद पीटर ने राज्य ऋति में स्वयं हिस्सा लेकर भमनेष के उन सभी महानुभावों को युद्धप्रवण बनाया था जेबल चर्च और प्रायता की ही सब कुछ समझते थे । हिन्दुओं के समान ही फ्रांस के ईसाई धार्मिक और राजनतिक दृष्टि से क्रुपसे आते थे । उन्हें किसी प्रकार की स्वाधीनता न थी । धमपरायणता भी सुप्त हो चुकी थी । इस दशा में भमगुद पीटर ने जब देखा कि स्वराज्य के बिना स्वधम की रक्षा धमंभव है तब उसने गुप्त रूप से वे

सारी कायबाहियाँ कौं जो समयजी ने यहाँ बरती थीं । राजनतिक और धार्मिक नीति की दृष्टि से यदि हम समयजी के जीवन चरित्र का और उनके काय का समन्वय करके तो हम यह कहना पड़गा कि समयजी धर्मयुग राजनीति के इस ससार में जनक माने जाएंगे ।

जिस प्रकार राज्य साधना में समयजी ने अपनी सारी शक्तियाँ लगा दीं उसी प्रकार, कवच राजनीति उनके जीवन का मुख्य न होने से धर्म और कर्म-साधना में भी उन्होंने पूरा योग दिया था । यों तो राज्य-साधना उनका प्रतिम लक्ष्य माना जाता है । परन्तु 'दासबोध' में दो सौ समास हैं उनमें केवल पाँच समास (भाग) राजनीति के बारे में उन्होंने लिखे हैं । फिर अपने शिष्यों को जो प्रमुक्त वीस आशाएँ दी हैं जो लक्षण के रूप में अंतर निहित हैं उनमें राजनीति का ज़राक पन्ध्रहवाँ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि राजनीति का कार्य समयजी के जीवन का आदर्श नहीं था । परन्तु राजनैतिक स्वतंत्रता के विना हिन्दू जनता सतोंप की साँस भी नहीं ले सकती—समयजी ने जब यह देखा तब धर्मसाधना के लिए राज्य-साधना के क्षेत्र में योग देने के वास्ते वे तैयार हुए । अतः धर्म-साधना के हित उन्हें राज्य-साधना में अपने जीवन का बहुत कुछ समय व्यतीत करना पड़ा । फिर भी राज्य साधना के बारे में वे कहते हैं

राजा आचरे राज धर्म राजी आचरे राज धर्म,  
 ब्राह्मण आचरे स्वधर्म बहुविध दग से ॥  
 सुरेव राज धीर सवारी प्रथम देखे निबिधारी  
 निबिधने पर भाग उठते हैं छोटे बड़े समर्थ भी ॥

समयजो क इन वचनो स उनको राजनतिक और धार्मिक प्रवृत्ति का घनायास पता चलता है । यद्यपि उन्होंने मुसलमानों क विरुद्ध प्रकट रूप से चेतावनी दी परन्तु उनम सांप्रदायिकता न थी—मुस्लिम द्वेष नहीं था । अपितु सद्बर्ष सद्बिचार सदाचार, सत्ययुग निर्माण हो यही वे चाहते थ । यह सत्य है कि जा इन प्रवृत्तियों क विरुद्ध थे उनको पानु समझ धमकाय के लिए घम-बुद्धि स उनका निपात करने की उन्होंने प्रकट रूप में सताह दी थी । यह भी सत्य है कि हिन्दुस्थान म हिन्दुओं का राज्य निर्माण हो यह वे चाहते थे । उनकी इस भूमिका के मुख्य दो कारण हैं । एक घाततायी मुसलमानों के पाश्चिक अत्याचार और दूसरा घम बुद्धि का बिनाश । इन दामो कारणों का बिनाश यही एकमात्र इलाज जानकर उन्होंने घम-बुद्धि को जगाया । क्षात्र प्रवृत्ति उसमें भर दी । इस भूमिका पर बिचार करने से यह स्पष्ट होता है कि घम के लिए घम का नाश करने पर वे उताह हुए । राजनीति का समझाते हुए उन्होंने इसीलिए सम्मार्ग मने के लिए साग्रह अनुरोध किया है । जो गृहस्वी को त्याग कर परमार्थ में लीन होना चाहते थे उनसे भी स्पष्ट शब्दों मे कहा कि गृहस्वी के बिना परमाय नहीं किया जाता । गृहस्वी शब्द का प्रयोग समर्थजी ने व्यापक अर्थ में किया है । गृहस्वी को सफल बनाने के लिए अनेक बंधनों के पासन की आवश्यकता होती है और ये बंधन मानबता के आधार पर स्थित होते हैं इसीलिए गृहस्वी को त्यागकर परमार्थ करने वालों को समर्थजी ने फटकारा । समर्थजी के जमाने में गृहस्थ-जीवन और गृहस्वी धर्म का भी सोप हुआ था । ऐसी वथा में ही उन्होंने इन धर्मों के परिपालनार्थ सद्बर्ष, सद्बिचार, सदाचार भादि मौनिक

मुर्गों की घोर जनता को प्राकृषित किया । जो मुसलमान इन मुर्गों की घोर प्राकृषित हुए उन्होंने समय पाया और जो अत्याचार को ही अपनाए थे उन्हें मौत के घाट उतारा गया । वे केवल मुसलमान हैं इसलिए नहीं अपितु वे अत्याचारी हैं इसलिए और उनके द्वारा अतिक्रमण होने पर । समयजी के कारण गिवाजी राजा गो-ब्राह्मण प्रतिपासक इसी भूमिका के आधार पर बने । इतिहास स्वयं इस बात को स्पष्ट करता है कि असहाय मुस्लिम युवती को गिवाजी ने अपनी माता मान उसे यथोचित गौरव दिया था । अतः समयजी में सौप्रदायिकता की थोड़ी भावना नहीं थी—यह सबसबही, सर्वहितदायिनी और सबउत्कृषयधिनी थी । मुसलमानों को अपने धर्म के अनुसार उन विनों जीवन यापन करने का पूरा अधिकार भी था और वे सुरक्षित भी थे । समयजी ने जिस धर्म की मुख्य रूप से समाज को दीक्षा दी उस धर्म के भाव ये हैं

कहार अमार हो या नाई  
संतोष पहुँचाए जैसे निरन्तर ।  
जो भजता है दिन-रात जगहें  
भजक कहलाता भगवान का ॥  
दुःख न पहुँचाए किसी को,  
उत्सव हो या नीच हो ।  
जो अंतःपारमा को जाने परखे,  
सज्जन कहलाता सबकाई से ॥  
इह लोक में यद्य पाता है  
पुहन्नी धर्म निभाने पर ।

परलोक में कुछ पला है  
 शरीरकार [करने पर ॥  
 ईतनाच छरीर पर्य,  
 त्यजने पर न त्यजे कभी ।  
 शीम शीव शरने ब्रह्म में  
 छरीर पर्य निभाएया ॥  
 तमदुष्टी सनभाव  
 तब हित दया तब ।  
 निष्ठ शर्त त्यजने पर,  
 समानता बाठा नर ॥  
 म्याप से श्रावरे शर्म,  
 बुझे श्रम्याप से सखा ।  
 एक नम एक कष्ट,  
 शर्म, शने पात्री वैहू का ॥  
 परीची को ईहकर  
 उपकार करे शर्मना ।  
 शोक सप्रह उपकार से,  
 बहूप्यन बाठा है नर ॥  
 गति बिधि प्रेम पाए,  
 मुक्त सापर उमड़ प्राए ।  
 राम राम्य बने ब्रह्म  
 संतोम पाए हर कोई ॥

समयजी की यही नीति राज्य साधना में मुख्य रूप से बरती गई थी । म सिवाजी राजा में अधिकार की सातसा थी न समय जी में । शिवाजी के साक्ष प्रयत्न करने पर भी समयजी ने अपने संप्रदाय के अनुसार निश्चित न्यायबाही में किसी प्रकार का अंतर

न पढ़म दिया। यदि वह चाहत ता राजगुरु क रूप में बड़ घानन्द  
घोर गौरव क माप भपना जावन विताठै। परन्तु वे धर्मसत्ता



उपरोक्त उपद्वय-यत्र शिष्य कस्वाय के द्वारा समझती ने मेधा बिसे  
महामन्त्री विद्याजी राजा को पढ़कर सुना रहे हैं।

क निर्माण में ही भपन का नगाना चाहत थ। निबी सप्रदाय के  
धारे में भी उनकी यही राय थी। घोर फिर स्वराज्य भले ही  
स्थापित हो चुका हा परन्तु उसका सुरक्षा का भार बहुत बड़ा  
था। उस भार को ढाने की सामध्य जब तक प्रत्येक व्यक्ति में  
निहित नहीं होती तब तक राज्य-साधना क कार्य से वे किस



प्रकार छूटकारा पा सकते थे ? राज्य की अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है और धर्म के बल मरौसे पर ही राज्य स्थिर हो सकता है तथा धर्म को फिर जागृत रखने के लिए विदेह व्यवस्था के अस्तित्व की निरन्तर आवश्यकता होती है। इसी भूमिका को निभाने के लिए समर्पजी ने जीवन धारण किया था। अठ व न पद चाहते थे न अधिकार। प्रभु रामचन्द्रजी के द्वारा शास की जो उपाधि उन्होंने पाई थी, उसी को सार्वभौम बनाने का प्रयास उन्होंने आजीवन किया।

समर्पजी के बरताव की छाप शिवाजी राजा पर भी पूर्ण रूप से भग चुकी थी। शिवाजी राजा ने समर्पजी की सेवा में जो पत्र भेजा था उससे यह बात स्पष्ट होती है

शिवाजी राजा का पत्र समर्पजी के नाम

प्रास्वित्त सु० १०	थी	थी रघुपति
मंक १९००		थी मास्ति

'सेवा में थी सद्गुणवर्ष, श्री सकसतीर्षक्य थी कैवल्पधाम श्री स्वामी समथ।

अरणरज अपने भाषे पर भरकर शिवाजी राजा थी अरणों पर सिपट यह प्राथना करता है कि आपने अपनी कृपादृष्टि से मुझे सनाथ किया। आपसे आज्ञा पाई कि धर्म स्थापना के बल स्वराज्य की स्थापना करके गौ-ब्राह्मणों की सेवा करें जनता को पीड़ा से मुक्त कर उसकी रक्षा करें और व्रत धर्म से परमाथ करें। मैं जो चाहूँगा वह प्रभु रामचन्द्रजी की कृपा से पूरा होगा।

आपकी इस आज्ञा के अनुसार मैंने प्रयत्न कर मनेच्छों का नाश किया। दोमत को जुटाकर राज्य की रक्षा के लिए अक्षय स्वामों का प्रबन्ध किया। अर्थात् जो कुछ मैं कर सका वह आप

ही की प्रेरणा से और जो सफलता पाई वह भाप ही के आशीर्वाद से। मत्त जो कुछ पाया और जो कुछ किया वह भाप ही के चरणों पर समर्पित कर अब मैं चाहता हूँ कि भापके संपर्क में रहकर भापकी सेवा का अभिलाष पाऊँ। लेकिन भापने मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत नहीं की। भापने पुनः धात्रा दी कि पूव-सूचना के अनुसार चलने पर अभिलाष और सेवा का फल पाओगे। इस धात्रा का भी मैंने सिर झिझोँ घर पासने का निश्चय किया। इसके बाद मैंने श्री चरणों की सेवा में यह निवेदन किया कि किसी एक स्थान का निश्चित कर वहाँ रहने की कृपा करें और अपने सम्प्रदाय का विस्तार करें। परन्तु भापने मेरी इस प्रार्थना को भी नहीं माना। भापने निश्चय किया है कि वनप्रदेशों में सतत भ्रमण करके ही गृहस्थों में रहकर ही मैं अपना जीवन बिताना चाहता हूँ।

वस्तुतः सारा राज्य बिन्दार भाप ही के बल-मरोसे और आशीर्वाद से होने के कारण मैंने यह इच्छा व्यक्त की कि जहाँ कहीं जितने मठ महत्त्व होंगे उनका पूजा-पाठ और धार्मिक उत्सव चलाने के हेतु जितनी भी भूमि समर्पित करना चाहेंगे उतनी भूमि समर्पित करूँ। परन्तु भापने अपने सम्प्रदाय को चलाने के लिए कभी भी और किसी प्रकार भी अपने मत को व्यक्त नहीं किया।

फिर भी श्री के आसपास के १२१ गाँव और १२१ गाँवों में प्रति ११ एकड़ जमीन और जहाँ-जहाँ हनुमानजी की स्थापना हुई है उन-उन गाँवों में ११ एकड़ जमीन श्री चरणों पर समर्पित करके मैं यह चाहता हूँ कि इन भूमियों के उत्पन्न (घाय) से सम्प्रदाय का प्रचार हो और पूजापाठ उत्सव आदि का सब पसे। अतिरिक्त

प्रति उत्सव के अवसर संकल्पित सेवायें प्रदान करने का प्रयत्न करता रहूँगा। धनाज घोर नकद प्रतिवर्ष नियमित रूप से उत्सव के अवसर पर निजवाने का प्रबंध कर चुका हूँ। शेष मैं अपने सर्वस्व के साथ संप्रदाय धमाने के बास्ते हमेशा प्रस्तुत हूँ। सेवाएँ मिलें।”

शिवाजी राजा का यह पत्र स्वयं इस बात का साक्षी है कि समर्थजी की सहायता व प्रेरणा से ही महाराष्ट्र धर्म का जागरण घोर महाराष्ट्र राज्य का निर्माण हुआ। परन्तु स्वयं समर्थजी अपनी अवस्था प्राप्तता एवं उद्देश्य को नहीं भूले थे। निश्चित योजना के अनुसार ही उनकी कामवाही जारी थी। धर्म के कारण राज्य घोर राज्य के कारण धर्म स्थित हो सकता है—बर्धित हो सकता है—अपनी इस भूमिका के अनुसार अपने धर्म का कार्य व करते रहे। जागृत धर्म का प्रभाव शिवाजी राजा के पत्र से स्पष्ट होता है।

#### समर्थजी का पत्र शिवाजी के नाम

समर्थजी अनुभूति के बिना किसी बात का उच्चारण तक न करते थे। जिस बात का वे उच्चारण करते थे उसका मूल घोर उसके हानि-साम का पूरा रूप से विचार करते थे। यद्यपि वे शिवाजी से बार-बार मिलते रहे परन्तु ‘राजधर्म नीतिधर्म, सुत्र धर्म’ आदि विषय दासबोध में उन्होंने केवल शिवाजी राजा के लिए मिले हैं। उनके बचन कानून का रूप धारण कर शिवाजी राजा के लिए हमेशा भागदर्शन घोर चेतना करने का काम करते रहे। इच्छा के अनुसार शिवाजी ने भी हर समय सफलतापूर्वक काम किया यह देखकर समर्थजी ने अपनी प्रसन्नता दर्शाने के लिए

धीर विवाही का यथोचित गौरव हो इसलिये जो पत्र लिखा है वह क्यों का स्थो विद्या जा रहा है।

“दौमठमद होकर भो योगी का जीवन बिठाकर तुम निदर्य के साथ जनता का आश्रय एवं आश्रय स्थान बन चुके हो। तुम्हारे परोपकार का गौरव बाणों के द्वारा नहीं किया जा सकता। तुम सबमुख नरपति हो। धनक घोड़े हाथियों और गधों का स्वामी हो। मामर्ष्य यथा नीति और पुण्य के प्रताप से तुम महागण्ड मूमि का पावन किया है। जनता पूज्य रूप से यह नाम चुकी है कि तुम धृष्टाचार, परोपकारी, समतावादी दानगुर और धर्म-मील हो। धन जागृति कर उसकी रक्षा के लिए तुम हमेशा सावधान रहकर समय-प्रसमय पर प्रसीम लाभदायक का परिचय देते हो। यद्यपि धर्म का नीति का विनाश हुआ था परन्तु तुमने धर्म प्रताप से धर्म का उद्धार कर धनक तीर्थ-स्थानों का निर्माण किया। यो ब्राह्मण और पंडितों का उचित सम्मान कर उन्हें आश्रय दिया। मुझे पूज्य विश्वास है कि समूचे हिन्दुस्थान में त्यागमय जीवन बिठाकर सपत्ता-बुद्धि से धर्म की रक्षा करना बाला तुम्हारे प्रतिरिक्त कोई नहीं है। सबमुख तुम शिव के अवतार हो। पूर्णरूप से कल्याणकारक हो। अधार्मिकों का बध करके धर्याष्टियों को सदेव धर्म की धरण में धान वासों का उद्धार करने से तुम्हारी नीति की चार चांद लगे हैं। यद्यपि अब तुम धा गए हो और धन काय विस्तार की बधा रहे हो पर तुम्हारा धनुर्पस्थिति से तेरे धनेकों काम रुक गए जिनके निस्तार में अब देरी न हानी चाहिए। मुझे खेद है कि धागमन के पश्चात् भी तुम्हारे दर्शन में पा न सका।

शिवाजी राजा को यह पत्र मानो एक कार्यपत्र ही है जो स्वयं समयजी ने लिखा है। पत्र के भाव से यह स्पष्ट होता है कि धागरे के पाशविक जारु से मुक्त होकर जब शिवाजी राजा महाराष्ट्र में पधारे तब यह पत्र लिखा गया है। शिवाजी राजा का छुटकारा और उन्हें महाराष्ट्र तक पहुँचाने की योजना समर्थजी ने ही बनाई थी और उनकी अनुपस्थिति में राज्य के कार्यों का प्रबन्ध भी समर्थजी ने किया था। यह बात इस पत्र के आधार से अनायास स्पष्ट होती है। समर्थजी कार्य में इतने मान थे कि शिवाजी के प्रायमन का समाधार पाकर भी वे उनसे न मिल सके।

रुगाठार तीस बर्ष कीर्धोद्योग करन पर जब महाराष्ट्र में धर्म सत्ता का उदय हुआ तब समयजी को महान धानन्द हुआ। वे कहते हैं—

ध्नेषुओं का संहार कर, पापी घोरप्या को जया,  
कर्मक्षेत्र बना धर्म पूजापाठ जभावे को ॥

“महाराष्ट्र में महाराष्ट्र राज्य और महाराष्ट्रधर्म की प्रतिष्ठा पना होने से सर्वत्र धामन्द छा गया है। अब किसी बात का भय नहीं रहा है क्योंकि सारे के सारे पापी और अधार्मिक दुष्टों का संहार हो चुका है। भय सर्वत्र धर्मक्षेत्र निर्मात्र हो चुके हैं। धर्म-कार्य से संतोष पहुँचाने के लिए यज्ञ प्रारम्भ किए गए हैं। प्रत्येक मनुष्य स्वाधीन बन अपनी इच्छाशक्ति के अनुसार अपनी-अपनी कारीगरी दिखाने में व्यस्त है। अब न कहीं अध्याचार होंगे न परपीड़ा का भय होगा। धर्म का वमब बढ़ाने के लिए क्या राजा और क्या प्रजा दोनों एक दूसरे के साथी बन सेवामात्र में तीन अपनी-अपनी कार्यक्षमता दिखा रहे हैं। अब संपूर्ण रूप से यहाँ रामराज्य का

निर्माण हुआ है। नीति और न्याय के पालन में ही सारे के सारे जुट गए हैं। मैंने जो कुछ चाहा वह सफल बना। प्राचीन का कुछ सहा, भोगा उसे भूखकर ध्रुव दिल चाहने लगा है कि ध्यान-भवन का मगस देखने के लिए पुनः एक बार जन्म धारण कर इस ध्यान-भवन में वास करूँ।”

समय रामदासजी के इन वचनों से यह बात स्पष्ट होती है कि स्वयंसे और स्वराज्य की प्राप्ति के बाद महाराष्ट्र ने बहुत बल्य स्वयं का निर्माण किया था। समूचा महाराष्ट्र देश धर्म के उच्चासस पर स्थित होकर भौतिक शक्ति और साधनों से युक्त बन पूर्व रूप से सुख के सागर में निमग्न हो गया था।

### प्रतिम पद-यात्रा

प्रयोध्या के प्रभु रामचन्द्र को अपने सन्निकट चाफळ में स्थित कर समर्थजी न संतोष की सांस ली। प्रभु रामचन्द्रजी की सुन्दर मूर्तियाँ तजाबर में गढ़ाकर समर्थजी स्वयं से धाए थे। मूर्तियों की विधियुक्त स्थापना करने के पदचात् जब समर्थजी को इस बात का पता चला कि शिवाजी राजा बहुत बीमार हैं तब वे स्वयं शिवाजी राजा के पास विरवाजी ग्राम में गए। उसी समय शिवाजी राजा ने रामनगर बसाया और अपने धर्मकार्य का यथोचित स्थायी प्रबन्ध किया। इस बीमारी से मुक्ति पाने के बाद शिवाजी महाराज समर्थजी के सहवास में लगभग डेढ़ महीना रहे। इस दीर्घनिवास में भी वे समर्थजी से अविप्यत के प्रबन्ध सम्बन्धी परामर्श करते रहे। समर्थजी ने यद्यपि यह जान लिया था कि शिवाजी राजा अब शरीर की धारणा में असमर्थ हो चुके हैं फिर भी किसी प्रकार के भाव को व्यक्त किए बिना व

शिवाजी राजा को परामर्श देते रहे । योजित कार्य धीरे उसकी दिशाओं का ज्ञान प्राप्त कर शिवाजी राजा रायगढ़ के लिए रवाना हुए ।

एक शिष्य जब उनकी मृत्यु का समाचार लेकर समर्थजी के पास पहुँचा तब समर्थजी ने कहा "मैं सब कुछ जानता हूँ ।" यह कहकर उन्होंने मौन धारण किया । शूल धीरे उस का वर्जन कर वे हमेशा वितित रहने लगे ।

शिवाजी के पदधातु उनके सुपुत्र संभाजी सिंहासन पर धास्तु हुए । वे यद्यपि बड़े बहादुर थे परन्तु सहायात्मा थे । जब उनके द्वारा सोतेसी में मंत्री शिवाजी भावजी का अकारण बल हुआ तब समर्थजी को महान दुःख हुआ । समर्थजी ने उनको तुरन्त पत्र लिखा

अपने मन के सविह को बुर फेंक दो । सर्वत्र मंगलमय बाधा-वरण निर्माण करो । जो अपने पास है उसे सुरक्षित रखकर और अधिक कमाओ । यदि बलता की सेवा कर विपवास संपादन करोगे तो महाराष्ट्र राज्य का विस्तार सम्भव कर पाओगे । एकाकी रहकर मनन धीरे चिंतन से अपने मन को शुद्ध बनाकर पिता शिवाजी राजा के अनुसार अगार चलोगे तो इच्छित काय में सफलता प्राप्त कर सकोगे ।

शिवाजी के अनुसार ही संभाजी राजा समर्थजी से मिलने के लिए अनेक बार गए थे । परन्तु शिवाजी राजा के बल बसने पर धीरे धारीरिक्त शक्ति के अभाव देने पर समर्थजी दिन प्रतिदिन उदास और लीण होने लगे । उनकी इस अवस्था को देखकर शिष्य वर्ग बहुत चिन्तित हुआ । जब उसने धार्त स्वर से समर्थजी से अन्वेषणी

का कारण पूछा तब समर्थजी बोले—

“यद्यपि मेरो देह और वाणी अंतरमुक्त बन गई है परन्तु ‘दासबोध’ के रूप में मैंने चिरजीवन पाया है और मुझे विश्वास है कि मेरा यह आत्मबोध आप लोगों के लिए निरंतर पथप्रदर्शन करता रहगा। शरीर और उसके मोह-वास में फंसकराहु-सी न बनो।

अपने प्रिय शिष्यों को यह अंतिम उपदेश देकर और अपने पश्चात् संप्रदाय के प्रबंध से संबंधित सूचनाएँ देकर समझ राम-वासजी ने श्री राम जय राम जय जय राम के जयजयकारों में अपने प्राणों को माज बदी १ सन् १६८१ के दोपहर को पंचमहा प्राणों में विसीत कर दिया।



## राज्य-साधन नीति

तेरे ही बन बोलू तेरे ही 'मायं बनू'  
 योग साधना राज्य साधना तेरे बन निभाऊँ ।  
 जिसको मैं जितने प्राणों, अक्षित बिन बुझा बने,  
 अक्षयों की कितने चिंता, वे तो बने तुमने को ।  
 अक्षित युक्ति जहाँ होती दोस्त वहाँ बिरादरी  
 बिदेही बन उपायी है, सामर्थ्य पाई बर प्रभु से ।

—वासुदेव

समर्थनी की यह राज्य-साधना अपनी नीति को इस प्रकार प्रकट करती है

बैचोही सब कुत्ते हैं उन्हें पीट भयाना होगा,  
 बैचवात पाएंगे घम इतने संदेह नहीं है ।  
 बेब तिर पर धारण कर, सबन मचाए भूमनाम,  
 देवा बूझे या लड़े, घम स्वापना के विधान में ।  
 किसी का मरोता न करो स्वयं सोचो धीरे विचरो,  
 अक्षित बाघो अपने घाव, हर किसी के काम से ।  
 सोचो, तमन्ने बहुत कुछ, अन्न मित्रों को परब लो,  
 धीरज को बनाए रखो, समय-अतमय बहु काम घावै ।  
 हर किसी से काम लो पास अपने पटकने न हो,  
 जोड़ बड़े सब लंबारो, प्रभु राम की कथा से ।  
 परमेश्वरी राज्यही बूँदकर बुने बुनाए,  
 यथाधीम संहार हो यथात्म्य सोच-विचार से ।

लोक नीति को धपनामो, प्रभु को कपा मानकर,  
स्वयं सहो धपकीर्ति को बीरय बम भितसे बड़ ।  
इसारों से काम न लो बोलो सो बहु न निजो  
जो सिपना है बहु न कहो केवल मुख से पवाकवा ।  
नेता के बिना काम न बके, नेता बनामो हर एक को  
पर्यहित जो काम आवे भावे प्रभु रामचन्द्र को ।  
एकाही जीवन बितामो, बिचार संयत बालू रजो  
पल में प्रकटे पल में पायब, सधंभूत हित रती ।

—दासबोध

समर्थजी के ये वचन इस बात को प्रनायास स्पष्ट करते हैं कि उनकी राज्यनीति क्या थी और वे उसमें किसने पारंगत थे । इस प्रकार क अनेक वचनों का अभ्यास करने के बाद यह प्रतीत होता है कि कपटनीति राज्यशास्त्र धर्मनीति समाजधारणा भावि विषयों का उन्होंने गहुरा अध्ययन किया था । अधशास्त्र को भी उन्होंने धीस से धोभन नहीं होन दिया । नीति के अवसन्धन में केवल एक बात को ध्यानमें रखा कि कहीं धर्म को छोट न पहुँचे । इसके धतिरिक्त सभी उपायों का धबलय उन्होंने किया । चाहे बहु युक्त हो या धनयुक्त हो सचाई पर धाधारित हो या मूठ पर, छम-कपट से हो या सरसता से । यहाँ तक कि हिंसा-अहिंसा का भी उन्होंने ब्यास नहीं किया । उन्हें इस बात का पक्का भरोसा था कि मैं जो नीति बरतता हूँ बहु प्रभु रामचन्द्रजी की नीति है । भोक्त-कस्याम को नीति है । सर्वोदय की नीति है ।

समय-असमय पर धनुषों से भी उन्होंने काम लिया और मौका पाकर उनका बध भी करवाया । छोटे हों या बड़े हों, उध्व हों धयबा नीच हों, छूठ हा धयवा धछूठ हों परन्तु बिचारों की

समानता भाचारों की समानता भर्म की समानता आदि समानता के जितने भी भ्रम हैं उन्हें परिपुष्ट कर समाज को समान स्तर



धिष्ण्य सख्त गुप्तार्थ को एक पानेदार है अब बसपूर्वक और घटारब पकड़ निबा छत्र सपर्यबी उसे सख्तगता का पाठ पढ़ाते हैं ।

पर माने की कोशिश उन्होमे की । जो जित घबस्था में जही काम थाया उससे सहायता प्राप्त की । अब किसी में शोह की आबना विबाई दी तब उसे उचित दण्ड भी दिया । मतसब गुप्त रूप से सभी बुजों को परब कर उन्होमे धर्म के कारण स्वराज्य स्थापना

के लिए उनको काम में लगाया ।

सम्राज्य की यह नीति स्वयं इस बात को स्पष्ट करती है कि न्याय धर्म्याय के वधनों में घिरे रहने से राज्य का निर्माण नहीं होता । उसके बास्ते अनुपद को फुसलाने के लिए मीठी वाणी का प्रयोग, धन का साक्ष्य दण्ड की धीस धयबा छम-कपट से उसे धपने जास में फँसाना प्रादि सारी क्रियाएँ धम-संगत मानी जाती हैं । मात्र धर्मनीति को बरतते हुए ये साधन निषिद्ध मान जात हैं । यद्यपि सम्राज्य का सक्रम धर्मसाधना या परन्तु स्वराज्य के बिना उसकी साधना असंभव होने से राज्य-साधना के क्षत्र मे सम्राज्यो का जुट खाना पड़ा और उसकी नीति के अनुसार जनकर धर्म की सुरक्षा स्थित की ।

सम्राज्य मे धन प्रत्यक्ष धावरण से इस बात को स्पष्ट किया है कि साधु हो या संन्यासी हो रागी हो या विरामी हो, ब्रह्मचारी हो या धानप्रस्थाधमी हो उसका यह कतव्य होना कि वह समाज या राष्ट्र के दुःख का म्बय अनुभव कर उसे दूर करने का प्रयास करे । वह सारे दास्यों का धर्म्यास कर उसकी शिक्षा-दीक्षा से समाज एव राष्ट्र को पारंगत बनाकर उसके सबधन में योग दे । व्यक्तिगत रूप से मोल की साधना करना जीवन से द्रोह करना है । द्रोणाचार्य भीष्माचार्य प्रादि धाचार्यों ने भी इसी नीति का धबसवन किया था । उस अमान में ता प्रत्येक ब्राह्मण वेदविद्या के साथ सस्त्र-विद्या और धाणिज्य विद्या को भी जानता था । समय धाने पर वह तीनों धान्यमा के परिपामन में योग देता था । जो नीति ब्राह्मणा पर लागू है वही दासियों, वैश्यों, शूद्रों पर भी लागू होती है । आसकर पराधीन धवस्या में धारे के धारे युगाम हाते



प्रभु रामचन्द्रजी के अमाने में अथवा विशेष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के समय ठीक यही दशा थी । द्रोणाचार्य भीष्माचार्य अथवा कालिदासजी ने राज्य-साधना में इसी भूमिका के आधार पर योग दिया था ।

राज्यपूताने की धारण जाति या महाराष्ट्र के बाहिर पचीस लोग इसी भूमिका को चरिताप करते रहे थे ।

यों तो देश के प्रत्येक नागरिक पर अपने देश की नीति को बनाए रखने की जिम्मेदारी होती है परन्तु वनिक हस्तचलों का यथोचित परिचय पाकर उसका सुपरिणाम अथवा दुष्परिणाम पर विचार करने में सामान्य लोग असमर्थ होते हैं । वे अपने-आपके चरिताप में मग्न रहते हैं । इस दशा में देश के जो बुद्धिवादी जीव हैं अथवा जिन पर गृहस्थी के विशेष बंधन नहीं हैं व राजनीति और धर्मनीति में अधिक सतक और कामक्षम रहें । समथ राम दासजी ने अपने शिष्यों-महर्षों को इसी प्रकार की शिक्षा दी थी । जो प्रत्येक देश के हितधियों पर सदा के लिए लागू होती है ।

मात्र इस बात का ध्यान सतत रखना चाहिए कि हम जो कुछ विचार अथवा आचार करते हैं वे धर्मसत्ता के बंधन में पोषक हों । आचार, विचार और सक्य की समानता जिस देश में होती है वह देश ही धर्मसत्ता पर आरुढ़ रहता है वह कदापि पराधीन नहीं होता । 'दासबोध' का विचार-मथन इसी बात को लक्ष्य कर कहता है—

एक देश एक आशा

एक विचार एक भाषा ।

राज्यनीति की यह भूमिका समर्थजी ने विशेष रूप से सिवाजी

राजा के लिए निर्धारित की। प्रत्यक्ष में उनको समझाई। समय के अनुसार पक्ष के द्वारा उसका विस्तार किया। अपने महंतों, सिद्धियों और गुप्तचरों को नीति के ये पाठ पढ़ाए। यहाँ तक कि कीर्तन और प्रवचन के द्वारा इन बच्चों के प्राधार पर सर्व साधारण जनता को शिक्षा-दीक्षा दी। जिससे समान विचार और प्राधारों का समन्वय हो सका। समय-सीमा भी कुछ सोचते थे, जिन विषयों का मयन कर विचारों का निर्धारण होता था उन विचारों को सिखा सकते थे। यही कारण है कि श्रीवमादर्शी 'दासबोध' का निर्माण हमारे लिए हो सका।

## धर्म-साधना

डा० रामाकृष्णन जैसे भारतीय सम्यता का अनुसंधान करनेवाले सभी महानुभाव यह मानते हैं कि दैनिक जीवन में धर्म बरता जाता है। यह महत्वपूर्ण बात को स्पष्ट करता है कि धर्म का अर्थ कम है। अर्थात् वह कम धर्म कहता है जो व्यक्ति से लेकर सारी मानव-जाति का पोषण दे। भारतीय मनीषियों ने भारतीय जीवन का अभ्यास करके और मनुष्यों की स्वभाविक प्रवृत्तियों को गवेषणा कर ऐसे कर्मों को धर्म का रूप दिया है जो जीवन को सुखी बना सकते हैं। अर्थात् यहाँ की असबाबु, स्वभाव-धर्म और प्रकृति के अनुस्यू कर्म धर्म निर्धारित किए हैं। कम के बिना जीवन की धारणा असम्भव होती है अर्थात् विना कुछ किए-बरे मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। कर्मों को निर्धारित करने से पूर्व भारतीयों का जीवन विशिष्ट पद्धति से गढ़ा जाता है। गुरुजन उसे ज्ञान-विज्ञान संपन्न बनाते हैं—वाचनिक उसे गति और विधि देते हैं और कलाकार उसमें जीवन विपयक रस भरते हैं। जब इन प्रयोगों से जीवन गढ़कर तयार होता है तो उससे बरती जाने वाली क्रिया व्यक्ति, कुटुम्ब, जाति, समाज और देश को पोषण देती है। चाहे वह क्रिया बातचीत की हो, उठने-बैठने की हो, शादी-ब्याह की हो अथवा वाणिज्य तथा किसी व्यवसाय से संबंधित हो। शिक्षकों कलाकारों, और दार्शनिकों द्वारा गढ़ा हुआ भारतीय



जीवन सन्धेच्छ है और उसकी क्रियाएँ भी ससार में मजबूत मानी जाती हैं। इन सारी बातों का अध्ययन करने के बाद धार्मिक हो या नास्मिक इन बात को स्वीकार करेगा कि दैनिक जीवन में धम भरता जाता है। धम का धम दक्षिणानुसी प्रवृत्ति के अनुसार बरती जाने वाली कोई क्रिया नहीं है। धम हमें ग्रा जीवन से सामञ्जस्य चाहता है और वह उन सभी विचारों एवं भावनाओं को मानता है जो उत्कर्ष की साधना में योग देते हैं।

भारतीय जीवन क्रिया धर्मार्थ धम की मुख्य रूप से दो प्रवृत्तियाँ मानता है। एक प्रवृत्ति जो शरीर को पूर्णरूप से सुखी बनाने का प्रयास करती है जिसे धर्म्युदय कहा जाता है और जो धार्मिकवाद के नाम से भी परिचित है। दूसरी है निवृत्ति, जो धार्मिक मूल के चिन्तन में जीवन को संवेदनशील बनाकर सर्वभूत हित रत की भावना जगाती है। ससार का भौतिक जीवन निवृत्ति के यथार्थ रूप को नहीं जानता और इसीलिए धम को पुरोगामी कहसने वाले भारतीय जीवन के इस रूप को धर्म कहकर उसकी खिस्ती उड़ाते हैं। परन्तु ससार जानता है कि विश्व-व्यथा की साधना भारतीय जीवन में की है। सातकर सत महर्षों ने इस साधना में विशेष योग दिया है। इसी साधना के कारण भारतवर्ष मध्यम बुली पराधीन और वरिष्ठ रहा फिर भी धार्मिक सुख का धन्य वह झूटता रहा। केवल धार्मिक धम पर। भारतवर्ष के सतों-महर्षों ने प्रत्येक युग में धार्मिक की गवेषणा की है और धार्मिक संतोष की साधनाओं को उपलब्ध रखा है। गौतम बुद्ध जिवेकान्त्य एवीन्द्र बाभु और महारमा गांधी जैसे धर्म संतों ने योग देकर धार्मिक संतोष की साधनाओं को

बार-बार उपसम्भार निवृत्ति की साधना की। यही कारण है कि दुनिया के बड़े-बड़े दार्शनिक भारतीय जीवन-योग को जानने का प्रयास कर आरिम्ब सुख को आज तक दुरुस्त रहे हैं। और वे यह भी मानते हैं कि भारतीय सभ्यता श्रेष्ठ है यानी भारतीय जीवन-योग की साधना अपूर्व है। अर्थात् दुनिया ने यह स्वीकार किया है कि निवृत्ति—भारतीय जीवन-योग अथवा भारतीय दसन शास्त्र सर्वश्रेष्ठ है।

जीवन-योग की इस भूमिका का चिंतन करने के बाद हमारे सामने यह सवाल उठता है कि फिर भारतीय जीवन दुखी क्या? इस प्रश्न का उत्तर समयकी ने अपने प्रादेशों से और प्रत्यक्ष जीवन से दिया है। समयकी के वक्त्रों द्वारा इस विषय का स्पष्ट करन से पहले 'दासबोध' के विचारों का मधन भूमिका के रूप में मही देना उचित होगा जिससे विषय के प्रतिपादन में सुहायता प्राप्त हो सके।

जब तक निवृत्ति और प्रवृत्ति हिंसमिसकर भारतीय जीवन में योग दे नहीं ठक तक बहु जीवन के उच्च स्तर पर आरुध था—पूणठ संपन्न था। उसने महामारण का निर्माण कर सगभग आधी दुनिया पर अपना अधिकार प्रस्थापित किया था। केवल अधिकार पान के लिए नहीं अनितु जीवन-योग का वास्तविक रूप दिखाकर मानव-जीवन सुवृद्ध और समवशाली बने इसलिए। यानी भारतीय जीवन का आक्रमक रहा है वह ज्ञान के क्षेत्र में। भौतिक सामर्थ्य को पाकर अपनी अधिकार सिप्सा मृष्ट करन के लिए उत्तन कधी प्रयास नहीं किया। भारत की यह परम्परा तब टट गई जब भारतीय जीवन में प्रवृत्ति और प्रवृत्ति के योग में

अन्तर पड़ गया। आगे चलकर जीवन से प्रवृत्ति का साथ छूटने लगा और जीवन ने केवल निवृत्ति का आश्रय लिया जो कोरा आदस बन गया। भारतवर्ष में जितने भी साधु-सतों ने अवतार धारण किए हैं सब के सब निवृत्ति के उपाजन का आग्रह कर प्रवृत्ति का घोर विरोध करते रहे। यद्यपि भारतीय जीवन योग निवृत्ति को अपना लक्ष्य मान प्रवृत्ति की साधना करता रहा यानी भारतीय जीवन ने अम्युदय को उतना ही महत्त्व दिया जितना निःश्रेयस को दिया था परन्तु जब प्रवृत्ति या निःश्रेयस का साथ जीवन से छूटा तब भारतीय जीवन दुःख दरिद्रता, पराधीनता में डूब वण तथा वगैरह कलह से छिन्न भिन्न हो गया। जब अम्युदय और निःश्रेयस में भेद था तब धर्म-शौकत, कला ज्ञान और अधिकार के पद पर भारतवर्ष स्थित था। जब केवल निःश्रेयस से उसने गठघन किया तब उत्कृष्ट के सभी धर्मों से मुँह मोड़कर वह आत्मसाधना में लगा रहा। भारतवर्ष की इस अवस्था को देखकर समझी ने प्रवृत्ति यानी अम्युदय की साधना को विशेष महत्त्व देकर इस साधना में सफल बनने के लिए सबप्रिय सर्वश्रेय गृहस्थो धर्म पर अपनी काय शक्ति केन्द्रीभूत की—जिस गृहस्थी धर्म के पालन से अन्य धर्मों का पालन सुलभ होता है। यद्यपि समझी के जीवन का लक्ष्य भी निवृत्ति या निःश्रेयस था परन्तु उन्होंने देखा कि निःश्रेयस के लिए शक्ति का स्रोत प्रवृत्ति से ही प्राप्त हो सकता है और यदि वह बन्द हुआ तो जीवन विषयक किसी भी धर्म की साधना हो नहीं सकती इसलिए धर्म-साधना के लिए उन्होंने प्रवृत्ति का आश्रय उचित माना।

प्रवृत्ति मनुष्य का स्वभाव है और उस स्वभाव को अनुकूल

बनाकर जीवन को सुखी बनाना मनुष्य का कर्तव्य है। जीवन की यह सामान्य भूमिका प्रवृत्ति और निवृत्ति के यथाथ रूप को स्पष्ट करती है। इसी भूमिका के आधार पर समथजी ने धर्मसाधना की। प्रवृत्ति अर्थात् अभ्युदय को उन्होंने अधिक महत्त्व दिया।

हम आज भी इस बात का अनुभव करते हैं कि हमारा आचरण 'मनः पूठम् समाचरेत्' बन गया है। हमारे सामने न कोई आदर्श है और न हम अपने आदर्श के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए तैयार हैं और न किसी की बात को हम मानते हैं। हमारी इस अवस्था का मुख्य कारण यह है कि हम केवल और कोरे निवृत्ति मार्ग का ही उपायम करते हैं। वस्तुतः निवृत्ति मार्ग से हम कोसों दूर हैं।

यह अवस्था समथजी के जमाने में भी थी। इसीलिए तो कम अर्थात् धर्म के प्रत्येक अंग का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर उसे धर्मस में साने की यथोचित विधि समथजी ने बतलाई। 'दास बोध' के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि समथजी ने धर्म-साधना के लिए प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को ही अपनाया है। परन्तु विषय की सुसमता को स्पष्ट करने के हेतु उन्होंने गृहस्थ जीवन और संन्यासी जीवन इस प्रकार जीवन के दो भेद मान आसान मापा में इनके उत्कर्ष को स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि चार आश्रमों और चार पुरुषार्थों का केन्द्र-स्थान 'गृहस्थ जीवन' है। अगर गृहस्थ जीवन की गुत्थियाँ सुसम्भ गइं तो निवृत्त या विवेक से जो संन्यासी बनेंगे उनके लिए मोक्ष का द्वार खुलेगा। यानी संन्यासियों को भी उन्होंने गृहस्थी धर्म सुसम्भाने का आदेश दिया है। जो गृहस्थी धर्म का उत्तम पालन करेगा

वह धनमास मोक्ष का अधिकारी बनेगा यह भी उन्होंने स्पष्ट किया है ।<sup>१</sup>

पहले गृहस्थी-धर्म को निमाघी  
 छिदर परमाशं की धोर ध्यान हो ।  
 यही ध्यातव्य काम न देमा  
 बिबेकी लोगों को ॥

ये बचन स्पष्ट रूप से यह जताते हैं कि गृहस्थी धर्म में किसी प्रकार भ्रानाकानी न होनी चाहिए । यही नहीं इस धर्म का बट कर पालन करना चाहिए । चाहे कितनी ही मुसीबत क्या न आ जायें धीरज और धातुरी से जो इस धर्म का पालन कर सकता है वही मोक्ष का अधिकारी हो सकता है ।

इस कथन का धर्म समर्थजी स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि गृहस्थी धर्म का पालन भी मोक्ष के हेतु होना चाहिए । धर्मादि मूल धर्म एक ही है और वह है निवृत्ति या मोक्ष का । परन्तु उन दिनों और आज भी गृहस्थ-जीवन में किसी प्रकार की कठिनाइयाँ धाने पर मनुष्य सुरंत विरामी बन निवृत्ति का प्रवक्षन करता है । लेकिन यह सच्ची निवृत्ति नहीं है । इसीलिए समर्थजी ने गृहस्थी धर्म की धोर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित एव बुद्ध किया । जो

१ धर्म का धर्म कर्म होये से कर्मसाधना प्रकरण में भी इस विषय को स्पष्ट किया गया है । फिर भी उस प्रकरण में गृहस्थ-जीवन को ही अधिक स्पष्ट करते हैं इस प्रकरण में धर्म के नाम परिचित विषय के बारे में अधिक विस्तार किया है । कुछ विकसित धर्मस्य हुई हैं । परन्तु इससे समर्थजी के ध्यातव्य की विवेक जानकारी ही प्राप्त होगी । जो धमा याचना की कोई धारम्यकता नहीं है ।

नाममात्र फकीर या सयासी बनवा या उसका समयजी ने घोर विरोध किया और उन्हें धम-काय में भी जुटाया ।

स्वयं सम्यस्त रहकर समयजी ने लगभग ५४ वर्षों तक धनक पय पक्ष और धेणो के मोगों का गृहस्थी धर्म के पाठ पढ़ाए जिससे जीवन की आस्था निर्मित हुई और उसकी उपयोगिता को जान महाराष्ट्र, महाराष्ट्र यता ।

विदेही अवस्था के भौतिक आनन्द को वे हमेशा गृहस्थी में पान को कहते रहे । हर किसी क्षेत्र में दासनिष्ठा की भूमिका को ही उन्होंने निभाया है । प्रथम प्रत्यक्ष में वक्तव्य के बाद ही हर किसी घटना या आदस को वे दिखाते गए ।

जो बुद्ध स्व का त्याग कर, जनत में स्व चाहता हो  
गृहस्थी को तोपकर बहु, साक्षात्कार करे धनस्त का ॥

धर्मात् शरीर धर्म का पालन केवल मोक्ष प्राप्ति के लिए है और वह पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए । केवल 'ग्रह ब्रह्मास्मि' कहने से काम नहीं चलता । क्योंकि ब्रह्म को न किसी में देखा है और न दिखाया है । गीता में कहा है—

अविनाशी तु तद् विद्वियेन सव मिद सतम्

ठीक इसी भूमिका को लक्ष्य कर समयजी कहते हैं—

मृत्यु एक पर्यवेसक, बुद्धरी प्रकृति अगदाकार,  
सीधरे हम जैसे बने और बीच हम दोनों के ।

इस वास्तविक दशा में हम यह क्योंकर कह सकते हैं 'ग्रह ब्रह्मास्मि ? हाँ, यह सत्य है कि अगदाकार यानी माया के हम अंश हैं और उसमें विलीन हो जाते हैं । यत धर और अन्तर का प्रयोग भी इसी रूप का स्पष्ट करता है । प्रभु रामचन्द्रजी को या भयवान्

वीकृष्ण को भवतारी पुरुष समझना भी व्यर्थ है। क्योंकि मृत्यु के पाश से वे भी अकड़े गए थे। जो 'मह दह्यात्मि' की भूमिका निराधार है। हमें क्षीर धर्म का शास्त्रीय पालन करना चाहिए। सुख-दुःख के भय से बिमुक्त बन जगदाकार में एक रूप होकर रहना चाहिए। यही मोक्ष है।

समर्थजी यह भी बतलाते हैं कि यह भवस्था हम न वेदों से पा सकते हैं न शब्द ज्ञान से। इस भवस्था को गुण के द्वारा हम भवपथ जान सकते हैं। यदि वे योग्य हों भयवा उनके संकेत को हम भलीभाँति समझें।

मत्स्य यह कि धर्मसाधना के लिए समर्थजी ने कर्मसाधना को विशेष महत्त्व दिया है। प्राप्त कर्म—चाहे वह सुठिगत हो भववा बंधगत हो—परन्तु उस कर्म को ज्ञान, भक्ति और उपासना के रूप में बरतने पर मनुष्य अपने जीवन को सुखी बनाकर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। महात्मा तिलकजी ने कर्म साधना को लक्ष्य कर ही 'गीता रहस्य' में विस्तारपूर्वक और साधारण भाँ विवेचन किया है उसी का प्राकृत रूप समर्थजी ने वर्णित किया है। यह कर्मसाधना और धर्मसाधना के अस्तित्व और मेल के सुन्दर सगम को दिखाता है। ये कहते हैं—

रामबाबो ब्रह्म ज्ञान, सारासार विचार कर,  
धर्म स्थापना के द्वित, करते कबहप उपासना।  
प्रथम धारके कम पाग, कर्म मार्ग से उपासना  
उपासना से पाए ज्ञान, ज्ञान से पाए मोक्ष भी ॥

ज्ञान-प्राप्ति के बाद भयवा विदेह भवस्था में भी धर्म साधना के लिए कर्म की साधना अनिवार्य है। क्षीर धारणा भी

कर्मसाधना के बिना असंभव है। जब हमने शरीर को धारण किया है तो उसे सुखी भी बनाना चाहिए और जब हम उसे सुखी बनाना चाहते हैं तब धर्मसाधना स्वयं कर्मसाधना में अन्त तक लगे रहना ही हमारा परम कर्तव्य है।

सामो बभस्वप शीघ्रं क्षान्तिराजबमेवच ।

ज्ञान विज्ञान मास्तिवय ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

धर्मसाधना के उपरलक्ष में समझजी ने अनेक यथन लिखे हैं।

मुख्य यथन इस प्रकार हैं—

देह में आत्मा का निवास  
पूजने पर पावे संतोष  
देह पीड़ा से कोब पावे  
देह के बिना पूजा कैसे ?  
न्याय नीति को परख कर  
अन्याय से बचते चले,  
लोक सप्रह कर न्याय से  
बर्ना तार्किक बहू न्यायी ॥  
अववाकार में तोप ही  
अप्र भगवान का कहे,  
नरादय, ज्ञान से बरते  
संबंधित समभाव से ॥  
अपासना से कर्म आदरे  
बैराग्य नी अपासना से,  
उपासना से ज्ञान पावे  
ज्ञान दान अपासना से ॥  
लोक ज्ञानी बनने पर  
पावे मुक्ति पुरंत ही,



बंधमुक्त भोगों के संय  
 बनता है नर पावन बहो ॥  
 निस्पृह बन कम आचरे  
 पर भोगों से बधित रहे,  
 उपासना से हमारे सब  
 कर्म कर्म विचार की ॥  
 यह भयंकर वा कीर्ति से  
 अपने को मुक्त रख  
 भोगों को स्थान दे कर्मों  
 योग्य ज्ञान एव कार्य में ॥

समर्थजी के इन वचनों से प्रवृत्ति और निवृत्ति की साधना का यथोचित परिचय होता है। निवृत्त रहने वाले लोग शानी होत हैं इसलिए प्रवृत्ति को संभोए रखने का भार अगर उनको सौंपा गया तो स्वभाव-सिद्ध प्रवृत्ति धुंध बन सकती है। प्रवृत्ति के उपासकों का यथोचित गौरव होता है। उनके अपने पदों के धनु सार उनको सम्मानित किया जा सकता है जिससे काय-साधना में सुगमता प्राप्त होती है। और फिर ज्ञान मार्ग से वे भी निवृत्त बन जाते हैं। ज्ञानता के साथ मोक्ष पाने में ही निवृत्ति की साधना सफल बन सकती है। समर्थजी के इन धार्मिक भावधर्मों का मर्मन करन के बाद महात्मा गांधीजी के कार्य का स्मरण हमें बरबस प्राणपित्त भरता है। गांधीजी भी विदेह रूप में मोक्ष पाने के हेतु जगता में रहकर धर्म साधना में लगे रहे। एक बात हमारे हृदय में अवश्य सटकती है। वह यह है कि जो महर्षि समर्थजी ने धर्म साधना के लिए प्रवृत्ति को दिया था वह महात्मा गांधीजी ने नहीं दिया। स्वभाव-सिद्ध धर्म की ओर देखने की दृष्टि दोनों की भिन्न

रही। फिर भी उपासना का माग समान रहा। दोनों जनता में, जनता के साथ रहकर धर्मसाधना करते रहे। दोनों का लक्ष्य धर्म-



प्रभाविकता धराप्रीमता के विकरास एकास का रूप समर्थजी जनता को सिखा रहे हैं।

सत्ता का निर्माप था। परन्तु समयजी शुद्ध रूप में हिन्दू धर्म सत्ता के प्रवर्तक थे और महात्मा गांधी मानव धर्मसत्ता के धर्म सापी थे। यद्यपि हिन्दू धर्मसत्ता से मानवता का मरण-शोषण होता है परन्तु महात्मा गांधीजी ने अपने सामन विशाल वृष्टिकोण रखा था। यह भी सत्य है कि समर्थजी के स्वाभाविक धारणों को

जिस प्रकार समाज न आत्मसात किया उस प्रकार महात्मा गांधी जी के विशाल आदर्शों का पालन समाज के द्वारा न हो सका। यद्यपि उसका प्रवर्तन आज भी होता है परन्तु स्वयं महात्मा गांधीजी ने अनेक बार यह स्वीकार किया है कि सत्य की उपासना बहुत कम सत्याग्रहियों के द्वारा होती है।

धर्मसाधना के उक्त षड्ध और उन बच्चों के अनुसार धर्म साधना की भूमिका को स्पष्ट करने के बाद समर्थजी की कुछ कार्य-साधक घटनाओं का उल्लेख यहाँ इसलिए किया जा रहा है कि उनसे धर्मसाधना के रूप की यथोचित कल्पना पाठक कर सकें।

### कुछ घटनाएँ

भारत भ्रमण के अवसर पर समर्थजी से अनेक सुप्रदायों के महानुभाव मिलते रहे। माँओं कहिए कि स्वयं समर्थजी ज्ञान संपन्न पंडिता की शोभा में रहते थे। अब कभी किसी पंडित से वे मिलते तब उन्हें महान आनन्द होता था। बड़े प्रेम और भावर के साथ वे उनसे आस्त्रार्थ करते थे। आस्त्रार्थ से ही ज्ञान का वर्धन होता है यह उनकी पक्की भावना थी परन्तु उनका आस्त्रार्थ ज्ञानवर्धन की सीमा तक ही मर्यादित रहता था। आस्त्रार्थ में अनेकों को पराजित कर उन्होंने विजय पाई थी। परन्तु पराजित पंडित या उसके सुप्रदाय के बारे में उन्होंने कभी अनादर की भावना का प्रदर्शन नहीं किया। यही नहीं उसके सुप्रदाय और स्वयं उससे भी सामञ्जस्य का बरताव कर उसको प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक आस्त्रार्थ के बाद वे इस बात को स्पष्ट करते रहे कि धर्मसत्ता के कारण स्वराज्य के निर्माण की आवश्यकता है और

स्वराज्य के लिए काय-साधना धमबुद्धि से करनी चाहिए ।

उत्तर भारत में धूमसे समय एक बार गुरु नानक संप्रदाय के एक महत्त्व से उनका साक्षात्कार हुआ । रिवाज के अनुसार समयजी ने उससे शास्त्रार्थ किया । जब उस महत्त्व ने समयजी के प्रमाणबद्ध धमयोग को जाना तब वह अनुग्रह देने के लिए समयजी से प्रायना करने लगा । समयजी ने उसे भ्रात्रह नहीं दिया । इतना ही नहीं उससे कहा एक बार किसी गुरु का अनुग्रह लेने पर उसके प्रति अपने हृदय में सदा श्रद्धा ही बनी रहनी चाहिए । किसी भी अवस्था में अपने गुरु के प्रति घनादर की भावना न खानी चाहिए । धन्य पंथ के गुरु से अभिभूत हो उठने पर भी केवल ज्ञानोपासक की भावना से अपनी ज्ञान पिपासा तृप्त करनी चाहिए । यह उपदेश सुनाकर समयजी ने उसे जागृत धम के महत्त्व को समझाकर वास्तविक धर्म में धर्माभिमुखी बनाया । उसे प्रसन्न करने के हेतु समयजी ने स्मृति रूप में अपने गुरुए रग के बस्त्र भी दिए । अपने संप्रदाय का न भौरव गाया और न उसे अनुचर बनाने का प्रयास किया ।

समयजी हिन्दू धम को एक विश्वास बृक्ष और हिन्दू धर्म के विभिन्न संप्रदायों को उसकी शाखाएँ मानते थे । प्रत्येक शाखा हरी-भरी रहकर वृक्ष को पोषण दे—वृक्ष को छायादार बनाए—यही धम और संप्रदाय-विषयक उनकी भूमिका थी । उन्हें बिदनास था कि जिस प्रकार वृक्ष की छाया, वृक्ष के लिए कदापि हानि कारक सिद्ध नहीं होती उसी प्रकार हिन्दू धम का कोई भी संप्रदाय हिन्दू धम को हानि नहीं पहुँचा सकता । यदि छाया की सहायता से कोई अधिक धन्य शाखाओं को काटता हो तो समयजी उसके

घोर विरोधी थे।

समर्पजी के जमान में संत तुकाराम नामी एक मस्तधृष्ट निवृत्ति-मार्गीय थे। वे बारकरी संप्रदाय के थे। फिर भी समर्पजी के हृदय में उनका प्रति महान आदर था। वे भी समर्पजी का आदर करते थे। दोनों धनक वार एक दूसरे से मिस घोर धर्म तथा देव का उच्चार करने से हेतु विचारों का आदान प्रदान किया। जब शिवाजी राजा संत तुकाराम से धनुग्रह पाने के लिए गए तब संत तुकारामजी ने उनसे कहा कि यदि आप समर्पजी से धनुग्रह लेंगे तो वे आपको यथोचित मागदर्शन कर सकेंगे। आप उसे राज नीतियों के लिए समर्पजी से धनुग्रह प्राप्त करना उचित होगा। क्योंकि समर्पजी अधिकारी राजनीतिज्ञ हैं और निवृत्त भी हैं। मैं केवल निवृत्तिमार्गी संत हूँ। यह सलाह स्पष्ट बताती है कि समर्प संप्रदाय उन सभी संप्रदायों का हितैषी है जो हिन्दू धर्म हित रखते हैं।

संत तुकाराम के मराठा होने पर भी श्री समर्पजी ने उनके साथ भाजन पाया। फिर भी वष-व्यवस्था के वे पक्षपाती थे। धर्मार्थ समाज की धारणा ज्यों की त्यों बनी रहे यही उनकी भूमिका थी। इसके अतिरिक्त जो मुक्त हुए हैं वे निवृत्त मुक्त हैं यह उनका मत था। राजनीति में भी वे कट्टरता को नहीं मानते थे।

एक बार महाराष्ट्र के चार संत शिरोमणि धर्म नीति पर बर्बाद कर रहे थे जिनमें समर्पजी, जयराम स्वामी रंगनाथ स्वामी और धानन्दमूर्ति थे। चारों भक्तिमार्गी और आत्मानुभव थे। आठवीं के सिलसिले में समर्पजी ने उनसे कहा 'भाइयो इस

समय कविता की एक पंक्ति मुझे याद प्राणी है।'  
 तीनों ने कहा, 'बाहू खूब ! सुनाइये तो डरा।'  
 समयजी बोले

मूबत नहीं जानता तनुमाव

जयराम स्वामी कहने लगे, मैं दूसरी सुनाता हूँ

होकर बेहो फिर भी बिबेही,

रगनाथ स्वामी ने तीसरी पंक्ति मुनाई

प्राण्य कर्म से भोगे भुपतना

प्राणदमूर्तिजी ने कहा, चौथी पंक्ति बनाकर मैं कविता  
 पूर्ण करता हूँ

ज्यों वायु के सब पादप का भूमना ॥

चार सत गिरोमणियों की यह समा स्पष्ट रूप से यह  
 बतलाती है कि उन दिनों जो प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं  
 उन सारी प्रवृत्तियों से समयजी ने मेल स्थापित किया था।  
 बाबा गोसावी जैसे मराठा जाति के संत को भी शिस्त  
 का मठपति बनाया था। शूद्रों एवं चोरों से संपर्क स्थापित  
 कर वे हीनता का अनुभव नहीं करते थे अपितु अपने संपर्क  
 से उनके बिचारों में परिवर्तन करते थे। इसी कारण ब्राह्मणों के  
 द्वारा उन पर अनेक साँछन लगाए गए। परन्तु अब उन्होंने समयजी  
 के प्रसाप को धर्मनीति को ब राजकाज को जाना सब के कारण  
 में भ्राए। समर्थ संप्रदाय कितना सबसप्रही था इस बात को स्पष्ट  
 करने के लिए निम्न दो उदाहरण सपोपक हैं।

एक बार अपने शिष्यों के साथ समर्थजी नहीं भ्रम प्रभाराय  
 जा रहे थे। बहुत देर मिरंतर चलने से शिष्यों ने भ्रम का अनुभव  
 किया। सहसा रास्ते के दोनों ओर ईस के श्वेत विसाई दिए। ईस

के खेतों को देखकर शिष्यों ने समर्थजी से ईस के बारे में पूछा । समर्थजी ने हर खेत से दो-दो ईस उखाड़कर साने की अनुज्ञा दी । ईस उखाड़ते समय खेत के मालिक ने जब देखा तब वह प्राण बचला हाकर समर्थजी के पास भागा और उन्हें अनुज्ञा समर्थ ईस के इन्हें से ही पीटने लगा । जब सारे शिष्य बचला खेत के लिए उताक हुए तब समर्थजी ने उन्हें रोका । इतना ही नहीं वह



समर्थजी ईस के डक से शिटन पर भी

भी समझाया कि जब अनुज्ञा के बिना ईस खूती है तब प्राप्त दण्ड की भुगतना ही धम है । इस प्रकार समर्थजी की प्रवृत्ति, स्वयं और उपदेश देना-मुनकर बहु क्षिमान समर्थजी का शिष्य बन गया ।

समथजी ने भी उसे बड़े प्रेम के साथ धनुग्रह दिया ।

एक बार कुछ घोर खोरी करने के वहाने सज्जनगढ़ के मठ में रात के समय घुस घ्राए और डांट डपट कर जो भी पास हो वह माँगने लगे । खोरों की यह उद्दत्ता देखकर शिष्यगण चिढ़ गए और इट का जवाब पत्थर से देने के वास्ते तयार हुए । यद्यपि वे शक्तिशाली थे, खोरों को भगा सकते थे परन्तु समथजी ने उन्हें रोककर कहा, 'माई इस दुनिया में आते समय हम क्या भाए हैं ? अर्थात् मित्रा के बल जो कुछ मिलता है वह धर्म बाध में लगाया जाता है । हमारा धन तो कुछ है नहीं । अगर हम से धन-काम हुआ चाहता है तो फिर बिठा क्यों करें और किसी से धनसम्पन्न मोक्ष क्यों लें ।' यह कहकर समथजी ने खोरों का हादिक स्वागत किया । उन्हें खिलाया पिलाया । समथ का बरताव और भाषण सुन वे खार समथजी के शिष्य बने और उनमें धनुग्रह पाकर समथ संप्रदाय का प्रचार करते रहे ।

धर्मनीति के बारे में समथ संप्रदाय भ्रष्टतवादी होने का दावा नहीं करता । परन्तु धारमानुभूत बनकर स्वयं को सेवक के रूप में समझने, प्रभु रामचन्द्रजी के स्थायी राज्य को मानने और राम राज्य की स्थापना करने पर ही मोक्ष की साधना होती है यह समथ धर्म-साधक का कहना है । अर्थात् धर्माध्ययन, मनन, चिंतन, सत्य की उपासना इन सारे मोक्षदायी धनुसंधानों को धर्म-साधक मानता है । बिधेपकर जिसका जो भी जीवन हो उसे अधिक से अधिक सुखकर बनाने में योग देने का भार धर्म-साधकों पर होता है । यह गुरुभार सँभालना बड़ा कठिन है । क्योंकि समाज के धनक स्तरों में धनेक प्रवृत्तियाँ काम करती हैं । उन सब स्तरों और



प्रवृत्तियों को जानकर उनकी समृद्धि का चिन्तन धर्म-साधकों को करना पड़ता है। जिसके धारे में गहन घादलों का जिक्र समर्थजी ने अपने 'दासबोध' ग्रन्थ में किया है।

मतलब यह कि धर्म का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसे धारण साध करने पर जीवन के विभिन्न भ्रमों का परिज्ञान धर्म-साधक को अपनायास होता है और यह अपने साथ अपने धर्म समाज धर्मवा दोष को संपन्न बना सकता है। गतानुगतिक धर्म-साधना का समर्थजी ने जोर विरोध कर धर्म की जो मूल नीति सामान्य की है उसे अपनाया—जो प्रकृतिस्थ है और जो समान धारण विचारों के मेल को बढ़ाकर सुख-संतोष को दशति है। जोर और शक्तिहर के साथ समर्थजी ने जो बरताव किया वह धर्म के ऊँचे स्तर का परिचय देता है, परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि धर्म्यायी को वे भरपूर दण्ड दिए बिना नहीं रहते थे। धारणबुद्धि भी उनमें पूरी थी।

## समर्थ संप्रदाय

जिस प्रकार भारतभर में कबीर संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, वारकरी संप्रदाय सिक्ख संप्रदाय जन संप्रदाय बुद्ध संप्रदाय आदि हिन्दू धर्म के अनेकों संप्रदाय हैं उसी प्रकार महाराष्ट्र में समर्थ संप्रदाय है। समर्थ संप्रदाय का यह नामाभिधान ही इस संप्रदाय की विशेषता स्पष्ट करता है। जो संप्रदाय शक्तिशाली है अथवा समयजी ने जिस संप्रदाय को स्थापित किया है वह है समर्थ संप्रदाय। किसी भी अन्वय और धर्म की दृष्टि से इस संप्रदाय की विशेषता को यदि स्पष्ट करना हो तो यह इस प्रकार कर सकते हैं—

जो संप्रदाय धर्म समाज और देश की विभिन्न नातियों में सामंजस्य निर्माण करता है और आपसी मतभेदों का वास्तवीय दृष्टि से दूर कर समान विचार समान आचार निमाण कर धर्म तथा देश के संबन्धन में अग्रत सबस्व का समर्पित करता है वह है समय संप्रदाय।

जो संप्रदाय बण, वग और अन्य संप्रदायों के आपसी भेद-भाव को दूर कर धर्म और देश की सेवा में अपने आपको लगा देता है वह है समर्थ संप्रदाय।

जो संप्रदाय समाजशास्त्र धर्मशास्त्र, धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, राज्यशास्त्र में प्राविण्य संपादन करके अपने आचरण से देश और

धर्म का अभ्युदय करता है वह है समर्थ सम्प्रदाय ।

जो सम्प्रदाय धर्म का विराधी पीड़ितों का साथी, ईंट का जवाब पत्थर से देकर अपने धर्म और देव की रक्षा करता है वह है समर्थ सम्प्रदाय ।

मतसब, प्रभु रामचन्द्रजी का आदर्श अपने सामने रखकर हनुमान क समान धर्म और देव का जो सम्प्रदाय भक्ति-भाव से उद्वार करता है वह सम्प्रदाय है समर्थ सम्प्रदाय ।

इस सम्प्रदाय की स्थापना स्वयं समर्थजी न की है । हिन्दु धर्म की सभी प्रवृत्तियों का जो दोष बर्णन करके उनके बाद वह किस मार्ग से सम्प्रदाय बन सकता है इस बात का निणय कर चुकने पर लगभग तीस वर्ष तक अपने आदर्शों के अनुसरण करने के बाद ही समर्थजी न इस सम्प्रदाय की स्थापना की है । अपने आचरण के साथ साथ दासबोध द्वारा समर्थ सम्प्रदाय के विधान को भी उन्होंने निर्धारित किया है ।

इस सम्प्रदाय को बनाने के लिए उन्होंने ११०० मठ, और ११ हनुमानजी के मन्दिर स्थापित किए और हजारों की संख्या में विप्य तथा संकड़ों महलों को जुटाया । यद्यपि इनके वरिष्ठों के लिए शिवाजी के द्वारा कुछ गाँव खोजे और बर्षासन इनाम में नियत हुए परन्तु मुख्य रूप से भिक्षा का ही प्रबलम्बन यह सम्प्रदाय करता है । अपने सम्प्रदाय के धारे में स्वयं समर्थजी कहते हैं

सौगों का संग्रह कर—आदर्शों के भाव जगा,  
लक्ष्मीयों के आश्रय से साथे हेतु साधना ।  
अपवित्त व्रत को मुख्य रवान

राजनीति को माने दूसरा  
 सावधान रहे तीसरे में  
 सर्वमूल क्षित-रत हो ॥  
 बीजे का धामय से प्राप्तियों को दूर करे  
 अपराधों को क्षमा करे, छोटा हो या बड़ा ॥  
 प्राचरण के प्राकट्य से, भक्तों को उपदेश सुना  
 गृहस्थी में सहायता से प्रकृत का अनुमान लया ॥  
 समाधों को बनाए रखे, समय को ईश्वर काम ले  
 चाहे किसी के साथ हो पर बिचारों से बचता चले ॥  
 कुछ दूसरों का जान ले—सुन बने तो दूर करे  
 सुख दुःख से बीच मान समुदाय में धरने को ॥  
 राजनीति में योग है गुप्त-वप है हर समय  
 बिल से न सहे किसी के, दुःख को परित्याग को ॥  
 असाधारण करे राजनीति बिलकी न तुलना हो सके ।  
 बने असाधारण सब कहीं मन के छुड़ रखने पर ॥

इस प्रकार राजनीति धर्मनीति और समाजनीति को स्पष्ट  
 करने के लिए समर्थजी ने अनेक वचन लिखकर मानी सम्प्रदाय की  
 नियमावली ही बना दी है । इस सम्प्रदाय का सम्प वही बन  
 सकता था जो साधारण रूप में उपरोक्त भूमिका को धरने प्राच-  
 रण से स्वीकृत करे । उसके लिए न कोई चदा या न पद या न  
 कार्यकारी का वचन था । धरने प्रापकी इस काम में सुदाने  
 वाला शिष्यों, महर्तों एवं सम्प्रदाय के धर्म राजनीति और  
 समाजनीति के पत्रियों की सलाह से चलने वाला और धरने साथ  
 दूसरे के जीवन को साधने का प्रयास करन वाला ही इस सम्प्र-  
 दाय का सम्प माना जाना था । कार्य के गुरुभार को निभाने के  
 लिए रामनबमी के अक्षर पर एकत्र होकर गुप्त रूप से योजनाएँ

वनाई जाती थी। हर कोई हूँ किसी को समाह देता था और सामाजिक तथा राष्ट्रीय धार्मिक और एकता को बनाए रखने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद का भवसवग करके गुप्त रूप से कार्य साधता था। मुख्य रूप से मठपति महंत के जिम्मे सम्प्रदाय के संचालन की जिम्मेवारी मानी जाती थी। मठपति महंत बड़ी बनता था जो अधिकारी पुरुष हो और ब्रह्मचारी हो। उसे शिष्य बनाने का, अनुग्रह मानी भ्रान्ता के रूप में समाह देने का अधिकार था। समय सम्प्रदाय जिस शिक्षा-दीक्षा से युक्त था और जो शिक्षा दीक्षा देता था उसका मुख्य सूत्र इस प्रकार था

गरबेह स्वाधीन है, बहु पराधीन क्योंकर बने ?  
 शिस्तकर सुने पर सेवा से, कीर्ति रूप अमरत्व में ॥  
 दूसरों के हित में लगे गिर्य निरन्तर शरीर जो  
 अभावों को भेदकर सार्थक बनता है तब नहीं ॥  
 दूसरों के हृदय को जान करते स्वयं स्वयंसे ही  
 उप धनेक परधने के अचमक करे सर्वदा ॥  
 पुस्ती की भीष अज्ञात, महान् पत्नों का विस्तार बढ़ा  
 कार्य उनारे निरन्तर जो प्रयत्नवादी कहलाता है ॥  
 जो अचकार करता है, चाहे उसकी होती है  
 इस संसार में अभाव को, बहु क्योंकर पाएगा ?  
 बरताव करे पितृवत पाप लोगों को पुत्रवत  
 महापुत्र्य बने तब, लोक-चित्ता निवात्य है ॥  
 जो शरीर को धारण किए, माने उसे अचवत स्वयं  
 सेवा से अचना-से पावे उसके भूम अचवत रूप ॥

ये अचन मानवता के आदेश का उभारते हुए मानवता की रक्षा का मार्ग भी दिखाते हैं। जीवन जीने के लिए है। यह मुक्त पूर्ण जीने के लिए है। डटकर जीने के लिए है। अथ उससे मुंह

मोड़ना कायरता है। जीवन की यह समर्थ भूमिका दिखाकर उसमें माने वाली भ्रष्टानों और उन भ्रष्टानों को दूर करने के उपायों का भी सविस्तर दशम समझजी ने किया है। अपनी गृहस्थी बसाने की अपेक्षा दूसरों की गृहस्थी बहादुरी से मुक्ति से, ज्ञान से बसाने पर ही मानव जीवन सुखी बनता है। इस आदेश को अपने सामने रखकर समर्थजी ने 'रामदास' कहलाने वालों को जो सूच नाएँ दी हैं वे इस प्रकार हैं

### कायसाधक रामदास

समर्थजी ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि राम का दास वही बन सकता है जो प्रभु रामचन्द्रजी के आदेशों पर बसता है। अगर अशुभ कार्य काई दास कहलाना चाहता हो तो उसे मुख्य रूप से इन दस बंधनों को धरना होगा।

१ ब्रह्मचर्य—दास कहलाने वाले का यह कर्तव्य होगा कि शारीरिक शक्ति को ब्रह्मचर्य से पाकर उसे पर सेवा में लगावे। जो शरीर से निर्मल होता है, वह सेवा-कार्य में सफल नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का पासन प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु दुगुने उत्साह से कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पासन काया, वाचा और मन से होना चाहिए।

२ धारमाराम प्रत्यय—जिसमें संवेदनशीलता होती है जो पर-पीड़ा को जान उसे अपनी पीड़ा अनुभव कर उसके निवारण का धरना सर्वस्व लगा देता है वही धारमाराम प्रत्यय का अनुभव कर सकता है। अपने को दुनिया के स्वरूप में देखना और दुनिया को अपने स्वरूप में पाना रामदास के लिए परम आवश्यक है।

३ आत्मबोध निवेदन—स्वयं मे जो ज्ञानकारी प्राप्त की है उसे यथातथ्य दूसरों से कहने की कला को धारमसात करना । घटा बढ़ा कर और पारणाम से वंचित किसी बात को यदि रामदास कहता हो तो वह इस अधिकार पद को नहीं पा सकता ।

४ निस्पृहता—मान, सम्मान धन भववा प्रतिष्ठा की भावना तक मन में न लाना । धर्म का प्रचार करने के हेतु साम्रह किसी से मित्रा न माँगना और जिससे जो प्राप्ति होती है उसका सम्रह कदापि न करना ।

५ बुद्धता—बिना सोचे समझे किसी बात को न कहना और जो एक बार कहा है उस पर घटस रहना । फिर चाहे प्राण ही क्यों न गँवामे पड़ें ।

६ सम्भूतहितरसता—द्वन्द्वभाव को दूर कर प्राणिमान के प्रति समत्व की भावना रख उनको भलाई के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहना ।

७ पीड़ा-निवारण—किसी की पीड़ा को बेख और मुन लेने के बाद उसकी पीड़ा को दूर करने के लिए ताबड़तोड़ और सफलतापूर्वक यत्न करना ।

८ प्रतिपादन तृप्ति—हम जो कुछ कहते हैं वह प्रभावकारी प्रमाण रूप धरन न हा तो प्रतिपादन की तृप्ति का मान हमें कदापि न होना और ऐसी वृथा में रामदास कहमान के अधिकारी न बनेंसे ।

९ विमल ज्ञान—ज्ञान विज्ञान-संपन्न बनकर उससे सबको तृप्ति देने का प्रयास करना । यदि वह ज्ञान अभिमान को जगाता हो कार्यक्षम न हो तो वह ज्ञान ज्ञान नहीं है और कुछ ज्ञान तो

विसकुस नहीं है—इस दृढ़ भावना से जो ज्ञान हमने पाया है उससे दूसरों को साम पहुँचाना ।

१० बुहराना—अपने कृत मकल्पों को ज्ञान को अपने विधान को सतत दुहराते रहना । जिसस किसी कार्य या विचार का बिस्मरण न हो, तथा अपन नियोजित कार्यक्रम पर डटा रह ।

### कायसाधक शिष्य

जिस प्रकार 'रामदास' के लिए कायसाधना के सिद्धांत को समर्वज्ञी ने स्पष्ट किया है उसी प्रकार महान के लिए भी वीस सिद्धांतों का पालन अनिवार्य माना है । इनके महत्त्व और उपयोगिता को भी 'दासबोध' में स्पष्ट किया है ।

(१) शुद्ध व साफ लिखावट का अभ्यास बढ़ाना ।

(२) नियमित रूप से धमअर्थ पढ़ मनन करना ।

(३) जिस बात को जान लिया है वह दूसरों से कहना—  
किसी बात को छिपा न रखना ।

(४) संदेह को पास तक न फटकने देना तथा संदेहमुक्त बरताव न करना ।

(५) सतत भ्रमण कर नवीन-नवीन अनुभव करना ।

(६) गायन-कला में नपुण्य प्राप्त करना ।

(७) नृत्यकला को अपनाना जा कीर्तन के भवसर पर उपयुक्त बन सकती है और जिसस दणक प्रभावित हो सकते हैं ।

(८) तात्वी बजाना जिससे ताम्र-सावन में अंतर न हो और संगीत तथा नृत्य के उभार में मेल बढ़े ।

(९) गूढ़ और कटु बचन का प्रयोग न हो । अपने कथन को स्पष्ट शब्दों में सुनाए ।



हमारा कुछ उपयोग हुआ भी तो वह धिंकार बनने के लिए हो होता है। समर्थजी कहते हैं—

सक्ति से राज्य पाए  
 बुक्ति से कार्य साधे,  
 सक्ति बुक्ति बर्हा होती  
 बुक्ति बर्हा बिराबती ॥

प्रभु रामचन्द्रजी के प्रति समर्थजी के मन में अतीव निष्ठा थी। सारे युग-युद्धों में उनके कार्य से, भावार्थ से और उपायों से समर्थजी प्रभावित थे। किसी भी मंदिर में पहुँचने पर वे प्रभु रामचन्द्रजी की ही बर्हा पाते थे। और उनके साक्षात्कार से अपने को धर्म मानते थे। यहाँ तक कि हर व्यक्ति में उन्हीं के रूप को देखते थे। प्रभु रामचन्द्रजी के प्रति समर्थजी की यह धारणा थी—

वतियों का उद्धार कर, कर दुर्जनों का संहार  
 मूर्धमति को धाम्य है, पावा भोक्त्वै राव है ॥

तर्क का ध्यायन करने वाले यदि भगवान् से साक्षात्कार करना चाहेंगे तो जिस प्रकार सेमकूब या मनोबिनोद के कार्य में वे तादात्म्य पाते हैं उसी प्रकार किसी भी मूर्ति के चित्तन में नियमित रूप से कुछ महीने तादात्म्य भाव से बैठें। वे बहुत अल्प इस बात का अनुभव कर सकेंगे कि जिस मूर्ति के ध्याम में वे सीन रहे हैं वह मूर्ति उनकी धार्तों के सामने है।

अपने को समर्थ बनाता हो तो समर्थजी संप्रदाय के अनु-यायियों से कहते हैं—

जीवन में घनेकों के  
 पतिबिधि है समूहों को  
 बुद्धि बल से पाता है नर  
 धनायास समय पर को ॥  
 बख्छाई को धपनाए  
 जहाँ भी देखें बुटा ले  
 बुराई का त्याग करे  
 बाभी मन बधाचार से ॥

### संप्रदाय का साप्रत रूप

धपनी धक्ति और तपस्या के बल पर उन दिनों समय  
 संप्रदाय ने राज्याध्यय पाया था । इसलिए समर्प-संप्रदाय प्रभावी  
 कार्य कर सका । धान्न संप्रदाय चलाने वालों में न उस प्रकार की  
 धक्ति पाई जाती है और न वह तपस्या मूर्त रूप लिए शेष है ।  
 इसीलिए धान्न का संप्रदाय राज्याध्यय न पा सका । परन्तु हमें  
 यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि उन दिनों का संप्रदाय केवल  
 राज्याध्यय पर ही धवलविठ नहीं था अपितु मुख्य रूप से उसने  
 सोकाध्यय ही पाया था । लोगों की धनेक समस्याओं को दूर करने  
 के कारण वह उसे धनायास प्राप्त हो सका । यदि धान्न भी जीवन  
 की विभिन्न समस्याओं को हल करने का प्रयास होगा तो वह  
 पुन धादरणीय बनेगा ।

यह सत्य है कि समर्प-संप्रदाय का कार्य विस्तार बहुत बढ़ा  
 है । परन्तु 'धम प्रचार' संप्रदाय का मुख्य कार्य माना जाता है ।  
 समूचे हिन्दुस्थान में और खासकर महाराष्ट्र में भक्ति प्रधान धार-

करी संप्रदाय जिस प्रमाण में पाया जाता है उस प्रमाण में समर्थ संप्रदाय नहीं है। इसके मुख्य कारण दो हैं। एक भक्ति-प्रधान प्रवृत्ति और दूसरा बौद्धिक कसौटियों पर कसकर बरती जाने वाली कार्य क्षम प्रवृत्ति। समर्थजी के जमान में भी भक्ति-संप्रदाय का महत्त्व बहुत बड़ा प्रमाण में था। परन्तु समर्थजी ने उससे सामंजस्य प्रस्थापित कर अपने संप्रदाय की प्रतिष्ठापना की। परन्तु इसका मसलम यह नहीं था कि केवल उन्हीं दिनों हिंदुओं के लिए यह तारक-सहित निर्मित हो। यद्यपि हजारों समर्थ शिष्यों ने उन दिनों राजनीति को अपने जीवित काम माना था परन्तु समर्थजी की राजनीति धर्मवश पर आधारित थी। धर्मसत्ता को लक्ष्य मान राजनीति के क्षेत्र में वह ध्वसीर्ण हुई थी। यद्यपि आज भी बड़े प्रमाण में समर्थजी का उत्सव मनाया जाता है और समर्थ-शिष्य भी काफी संख्या में विश्वरे पड़े हैं परन्तु भक्ति-प्रधान बार करी संप्रदाय की वे बराबरी नहीं कर सकते। यह भी सत्य है कि समाज धारणा के लिए जो प्रवृत्तियाँ समर्थ-सम्प्रदाय में पाई जाती हैं वे बारकरी सम्प्रदाय में नहीं हैं। समर्थ-सम्प्रदाय तर्क-प्रधान है और बारकरी संप्रदाय भक्ति-प्रधान है। यद्यपि तर्क और भक्ति में मेल करने का प्रयास समर्थजी ने किया परन्तु धारो चलकर यह परम्परा नहीं टिक सकी। वस्तुतः तर्क और भक्ति ये दोनों प्रवृत्तियाँ मानव-जीवन को पोषण देने वाली हैं। समर्थ सम्प्रदाय में भक्ति को प्रधानता धनस्प थी गई है पर जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों में वह बिभाजित हुई है। समर्थ-सम्प्रदाय के लोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बिचरते हैं और अपने सम्प्रदाय के अनुसार बरतते भी हैं परन्तु बारकरी सम्प्रदाय के लोग भक्ति-

भाव को अन्य क्षेत्रों में उतमा महत्त्व नहीं देते। भयवा केवल भक्तिभाव से जीवन की उलझनों को वे नहीं सुलझा सकते। मतलब समर्थ-संप्रदाय छोटा क्यों न हो परन्तु जीवन धारणा के लिए उपयुक्त होने से वह अपने प्रभाव को लिये आज भी महाराष्ट्र में स्थित है।

अगर समर्थ-संप्रदाय को पुनः प्रभावपूर्ण करना हो तो भक्ति और तर्क-प्रधानता में मेल बढ़ाना होगा। तर्क प्रधान प्रवृत्तियाँ बढ़े प्रमाण में प्रयास करने पर भी भारतीय जीवन का प्रतिनिधित्व करने में आज भी असमर्थ पाई जाती हैं। हमने यह अनुभव किया है कि देश-गौरव सुभाषचन्द्र बसु, अश्वती राजगोपालाचारी भयवा स्वयं पंडित नेहरू भी अनेकानेक संप्रदायों को बलाकर असफल हुए हैं। परंतु तर्क और भक्ति के मेल को बढ़ाने पर ही आज का संप्रदाय ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। भक्ति और तर्क का स्वतंत्र अस्तित्व भारतीय जीवन को कदापि सुखी नहीं बना सकता।

इस प्रकार की विचारधारा का प्रभाव मुख्य रूप से आज के समर्थ-संप्रदाय में दिखाई देता है। यही कारण है कि वह प्रभावी न बन सका।

फिर भी वह चाहे प्रभावी हो भयवा न हो परन्तु उससे जीवन-योग का दर्शन हमेशा होता रहा है और होता रहेगा। समाज और राजनीति के लिए साधन शुचिता का प्रभाव होने पर भी धर्म त्रैलोक्य का जो रूप संप्रदाय ने अपनाया है वह हिन्दू जाति के लिए आज भी बोधप्रद अवयव बनता है। समर्थजी का आदेश बितने प्रमाण में धार्मिक क्षेत्र में करता जाता है उतने प्रमाण में

सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में आज वही बरता जाता। इसीलिए समर्थ-संप्रदाय जीवन को पोषित करने में असमर्थ बना है। मात्र सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में जो महानुभाव आज काम करते हैं वे अगर संप्रदाय के आदर्श पर काम करेंगे तो निश्चय ही यह संप्रदाय पुनः जीवन में जीवन भरकर समर्थ बनेगा। 'दासबोध' ग्रन्थका समर्थ-संप्रदाय का मंतव्य आज यह कहता है—

एक और भक्ति के मेल से धर्मसत्ता की स्थापना कर सामाजिक एवं राजनैतिक उल्लंघनों को ज्ञान-विज्ञान के बल से सुलभ्यो।

परन्तु आज ऐसा यह जाता है कि राजनीति और समाज नीति में धर्म के लिए बिल्कुल स्थान नहीं है। धर्म की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया जाता है। ज्ञान के बल पर ही सामाजिक और राजनैतिक प्रश्न सुलभ्ये जाते हैं। परन्तु ज्ञान का भूमिका स्थिर नहीं है। अपनी-अपनी धनुमुक्ति और संस्कारों के अनुसार प्राप्त ज्ञान से राजनीतिक और सामाजिक प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति सुलभ्ये का प्रयास करता है। कोई धर्म की भूमिका को ज्ञान के क्षेत्र में अधिक महत्त्व देता है और कोई समाज धर्मका व्यक्ति-प्रभावता का पक्षपाती बन ज्ञान का प्रदर्शन करता है। परन्तु यह प्रयास पारंपारिक ढंग पर आधारित है। यही कारण है कि भारत वर्ष में अनेक पक्ष और पक्ष सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को हल करने का बीज प्रयत्न कर चुके हैं और कर रहे हैं किन्तु भी जीवन विषयक समस्याएँ प्यों की ल्यों बनी हुई हैं अपितु अधिक जटिल हो रही हैं। अतः भारतीय स्वभाव-सिद्ध भूमिका

को ही सत्य कर ज्ञान की मीमांसा निर्धारित करने पर ये प्रश्न सुलभ हो जा सकते हैं। किसी विशिष्ट कार्य के प्राग्रह द्वारा ये प्रश्न हल नहीं हो सकते। गत सौ वर्षों के इतिहास का अध्ययन करने के बाद हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय धर्म-मत ही ज्ञान विज्ञान संपन्न है अतः उसी के आधार पर सामाजिक एवं राजनैतिक प्रश्नों को हल करना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि भारतीय धर्म-मत किसी विशिष्ट पंथ या पक्ष का प्राग्रही नहीं है। वह स्वभाव सिद्ध है। सर्व-संप्रही है। इसी भूमिका के आधार पर तो सावरमती आश्रम में शांति-निकेतन में, बनारस विश्वविद्यालय में भगवा तिरुक विद्यापीठ में धर्म प्राध्यापन को महत्त्व दिया गया था। समर्थ-संप्रदाय का यह कर्तव्य है कि आज भी वह राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों को सुलभ करने के लिए धर्मप्रधान योजना को जनता के सम्मुख रखे। जिससे जीवन की गुत्थियाँ सुलभकर भारतीय जीवन समर्थ बने। परमसत्त्व स्व-राज्य प्राप्ति के बाद हमारा जीवन संपन्न बनना चाहिए था। पर वह नहीं बना। अतः सर्वसम्मत धर्म भूमिका का भवतबन परम आवश्यक हुआ है क्योंकि हमारा धर्म-मत विशाल सर्व-संप्रही और उत्कर्ष प्रधान है। देखा यह गया है कि समर्थजी के अनन्तर भी सावरकरजी न इस धर्म-मत का बिस्तेपथ अपने ग्रंथों में किया है। समर्थजी और सावरकरजी के ग्रंथों का यह संतुल्य है कि भारतीय जीवन हिन्दू धर्म-मत के अनुसार ही उत्पन्न हो सकता है। अपने प्रापकी रक्षा करने के बाद ही दूसरों की रक्षा का प्रश्न उत्पन्न है और वह हिन्दू धर्म-मत के अनुसार सतोपजनक ढंग से सुलभया भी जा सकता है। अतः सबसे पहले हमें अपने वीरों पर

सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में आज नहीं बरता जाता। इसीलिए समर्थ-संप्रदाय जीवन को पोषित करने में धसमथ बना है। मात्र सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में जो महानुभाव आज काम करते हैं वे अगर संप्रदाय के धावप पर काम करेंगे तो निश्चय ही यह संप्रदाय पुनः जावन में जीवन भरकर समथ बनेगा। 'वासबोध' अथवा समय-संप्रदाय का महत्व आज यह कहता है—

तक और भक्ति के मेल से धमसत्ता की स्थापना कर सामाजिक एवं राजनैतिक उलझनों को ज्ञान-विज्ञान के बल से सुलझाओ।

परन्तु आज देना यह आता है कि राजनीति और समाज-नीति में धर्म के लिए बिलकुल स्थान नहीं है। धर्म की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया जाता है। ज्ञान के बल पर ही सामाजिक और राजनैतिक प्रश्न सुलझाए जाते हैं। परन्तु ज्ञान की भूमिका स्थिर नहीं है। अपनी-अपनी अनुभूति और संस्कारों के अनुसार प्राप्त ज्ञान से राजनैतिक और सामाजिक प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति सुलझाने का प्रयास करता है। कोई धर्म की भूमिका को ज्ञान के क्षेत्र में अधिक महत्त्व देता है और कोई समाज अथवा व्यक्ति प्रजातन्त्र का पक्षपाती बन ज्ञान का प्रदर्शन करता है। परन्तु यह प्रयास पाश्चात्य ढंग पर आधारित है। यही कारण है कि भारत अर्थ में अनेक पंच और पञ्च सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को हल करने का धीरे-धीरे प्रयत्न कर चुक है और कर रहे हैं किन्तु भी जीवन विषयक समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं अपितु अधिक जटिल हो रही हैं। अतः भारतीय स्वभाव सिद्ध भूमिका

को ही लक्ष्य कर ज्ञान की मीमांसा निर्धारित करने पर ये प्रश्न सुलझाए जा सकते हैं। किसी विशिष्ट काल के आग्रह द्वारा ये प्रश्न हल नहीं हो सकते। गत सौ वर्षों के इतिहास का अध्ययन करने के बाद हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय धर्म-मत ही ज्ञान-विज्ञान संपन्न है, अतः उसी के आधार पर सामाजिक एवं राजनैतिक प्रश्नों को हल करना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि भारतीय धर्म-मत किसी विशिष्ट पंथ या पक्ष का आग्रही नहीं है। वह स्वभाव-सिद्ध है। सब-सग्रही है। इसी भूमिका के आधार पर तो सावरकरजी आश्रम में शांति-निकेतन में, बना उस विश्वविद्यालय में अथवा तिलक विद्यापीठ में धर्म-प्राप्तियों को महत्त्व दिया गया था। समय-संप्रदाय का यह कथम्ब्य है कि ज्ञान भी वह राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए धर्म-प्रधान योजना को जनता के सम्मुख रखे। जिससे जीवन की गुत्थियाँ सुलझकर भारतीय जीवन समर्थ घने। दरप्रसल स्व-राज्य प्राप्ति के बाद हमारा जीवन संपन्न बनना चाहिए था। पर वह नहीं बना। अतः सर्वसम्मत धर्म-भूमिका का अवलंबन परम आवश्यक हुआ है क्योंकि हमारा धर्म-मत विशाल सब-सग्रही और उत्कर्ष-प्रधान है। देखा यह गया है कि समर्थजी के अनन्तर बीर सावरकरजी न इस धर्म-मत का बिस्तेपण अपने प्रश्नों में किया है। समर्थजी और बीर सावरकरजी के प्रश्नों का यह मतम्ब्य है कि भारतीय जीवन हिन्दू धर्म-मत के अनुसार ही उत्पन्न हो सकता है। अपने आपकी रक्षा करने के बाद ही दूसरों की रक्षा का प्रश्न उठता है और वह हिन्दू धर्म-मत के अनुसार सतोपबनक ङंग से सुलझाया भी जा सकता है। अतः सबसे पहले हमें अपने पैरों पर



सङ्गे होना चाहिए । परन्तु वेसा यह जाता है कि प्राजकल अपनी चिन्ता करने की अपेक्षा हम दूसरों की चिन्ता अधिक करते हैं । समर्थजी ने इस निवृत्ति-मार्ग का घोर विरोध किया है । सो समर्थ-संप्रदाय की नीति प्राज सा धरती जा सकती है, यदि उसकी रचना में परिवर्तन हो । समर्थ-संप्रदाय का यह परम धन है कि वह इस भूमिका पर गभीर होकर विचार करे ।

## चमत्कार के चमत्कार

अपनी बुद्धि और क्षमता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति चमत्कार दिखा सकता है और कदाचित्त वह बुद्धिगम्य एवं अगम्य भी बन सकता है। परन्तु वह चमत्कार यदि धर्म या राष्ट्र को जीवन देने में असमर्थ हो तो निश्चय ही हमारे लिए हानिप्रद बनता है। उससे हम कुतर्क के बश में आ जाते हैं। वस्तुतः चमत्कार की भूमिका एक आदर्श और उपयुक्त काम के लिए प्रेरणा देने वाली होती है। चमत्कार की परिभाषा उसका अर्थ और धर्म लगान की क्षमता मात्र हममें होनी चाहिए। उसके अभाव में चमत्कार को अज्ञानी घटना या अतर्क्य घटना कहकर टाउन के प्रयास को ही हम बुद्धिमानी समझते हैं। यह सत्य है कि प्रत्येक युग में चमत्कार अज्ञान और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न पाए जाते हैं वे समान नहीं होते।

आजकल इस धारणा को हम सर्वसम्मत मानते हैं कि हमारा दृष्टिकोण कुछ वास्तववादी हो गया है। इसी भूमिका के आधार पर या तो धार्मिक चमत्कारों की हम खिल्ली उड़ाते हैं या अति-भाव से उनका गौरव गाते हैं। परन्तु हमने कभी यह प्रयास नहीं किया कि वास्तव में वे चमत्कार उन दिनों उस अवस्था में किस प्रकार जीवनदायी हुए थे।

समय रामनासजी के जो चमत्कार यहाँ प्रस्तुत हैं वे सब

राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन में चेतना भरने और व्यक्तिगत जीवन को विकसित करने वाले हैं। परन्तु इन चमत्कारों के भ्रमण में उपरोक्त दोनों भावों का प्राथम्य नहीं लिया गया। 'दासबोध' समझा उपलब्ध समर्थ-साहित्य के आधार पर ही समर्थजी के चमत्कारों का अन्वय और अर्थ लगाया गया है जो शाश्वत जीवन का प्रेरक होगा।

### हिंसा-अहिंसा की मर्यादा

बारह वर्ष धीरे तपस्या और बारह वर्ष भारत भ्रमण कर चुकने के बाद समर्थजी ने योग सिद्धियाँ प्राप्त कीं। मानी वे अपनी कार्य विधाओं को निश्चित कर सके। उन सारी सिद्धियों को उन्होंने धर्म-सेवा में—जन-सेवा में लगा दिया। जब वे उत्तर भारत का भ्रमण कर महाराष्ट्र के धर्मक्षेत्र पैठण गाँव में आए तब उनके हाथ में धनुष और पीठ पर तरकश था। कुछ ब्राह्मणों ने उनको इस वेश में देखकर मजाक उड़ाने के लिए कहा—

“क्यों महाराज, केवल शस्त्र धारण किए हो या इसे चमकाना भी जानते हो? केवल शस्त्र धारण करने से मनुष्य बहादुर नहीं बन सकता। यदि सचमुच तुम बहादुर हो तो घासमान में उड़ने वाली उस चील पर घपना निशाना जमाकर बिसाओ। देखो तुम कैसे धम्कवारी हो?”

ब्राह्मणों की इच्छा को टाड़कर समर्थजी ने तीर जसाया। ज्यों ही तीर तरकश से निकला त्यों ही वह चील जमीन पर घा गिरा।

उस मृत चील को देखकर ब्राह्मण बहने लगे, “साधु महाराज।

समय का स्वाय करन पर भी इतना धोर पाप ! गिव सिब गिव !  
 क्या प्रहिषा न मामूली सिद्धात को भी तुम नहीं जानते ? क्या



समय

तुम यह मानते हो कि चीर के कोई प्राण ही नहीं होते ? क्यों  
 नाहक साधुत्व का स्वांग लिए धम का प्रदत्तन करते हो ? तुम्हें  
 धम प्रायश्चित्त करना होगा ।”

यह कहकर ब्राह्मणों ने समयजी का पकड़ नाई के द्वारा  
 उनका मुहम कराया । और समयजी भी सुपचाप ब्राह्मणों की  
 साङ्ना सहते रहे । इतना ही नहीं और के परचात् उन्होंने विधि

युक्त प्रायश्चित्त भी किया ।

शास्त्राधार से युक्त प्रायश्चित्त करने वाले समर्पजी को देव  
ब्राह्मणों में मजाक की भावना पुनः भाग उठी । वे कहने लगे—

“भाई, शास्त्र में तो तुम निपुण हो । परन्तु क्या तुम्हारे शास्त्र  
में प्राणदान की विधि भी है ? या केवल कोरे शास्त्री हो तुम ?  
जरा दिखाओ तो अपने शास्त्र का प्रताप ? अगर चील को प्राण-  
दान दे सको तो हम मानेंगे कि तुम सचमुच शास्त्री हो । अन्यथा  
यह सिद्ध होगा कि तुम मात्र हिंसा के पुजारी हो ।”

ब्राह्मणों का यह भाषण सुन समर्पजी ने उस चील के शरीर  
को सहलाया । हाथ के स्पर्श से वह चील घात की घात में उड़  
गई । ब्राह्मण देवता मुंह छटकाए रह गए ।

समर्पजी की सामर्थ्य को जब वे देख चुके थे परन्तु चुके थे ।  
जब उन्होंने समर्पजी के प्रताप को देखा तब अपने क्षुद्र प्राचरण  
पर उन्हें परित्याप हुआ । वे समर्पजी से क्षमा-याचना करने लगे  
और अनुग्रह के लिए हठ भी करने लगे । तब समर्पजी ने उन  
सबको 'भीराम जय राम जय जय राम' का गुह्यमंत्र देकर कहा—

“भाई ! शास्त्र और दृष्टि का एक ही स्वरूप होता है । दोनों  
मानव-जीवन की कल्याण साधना के दूत हैं । लेकिन भ्रम के कारण  
शास्त्र और दृष्टि की मर्यादा को तुम भूल गए हो । जो दृष्टि  
धारण करता है उसे शास्त्र भी जानना चाहिए और जो शास्त्र  
जानता है उसे दृष्टिबिद्या में भी निपुण होना चाहिए । दृष्टि और  
शास्त्र दोनों एक दूसरे के पोषक एवं एक दूसरे पर अवलम्बित हैं—  
जैसे प्रकृति और पुरुष । लेकिन जीवन के विकृत रूप को दशन  
मान तुम न शास्त्र के आदर्श को जान पाए हो न दृष्टि की महत्ता

का तुम्हें परिचय मिला है। हिंसा का अधिकारी वही धन सकता है जो अहिंसा की मर्यादा को जानता है। वह हिंसापर शास्त्र-सम्मत नहीं है जो प्रकारण और द्वेषबुद्धि से किया गया हो। शास्त्र की अपेक्षा शास्त्र खेप्ट है। जो शास्त्र में पारगत बनता है वही शास्त्र ग्रहण कर सकता है। और शास्त्र की रक्षा के लिए उसका उपयोग धर्म-बुद्धि से कर सकता है।”

जमनी के महान दार्शनिक श्री आइन्स्टाइन और हमारे राष्ट्रनता पं० नेहरू इसी भूमिका का विस्तार करते हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण ने और प्रभु रामचन्द्रजी ने प्रस्तुत की है। परन्तु भाग माना यह जाता है कि शास्त्र केवल हिंसा के लिए हैं फिर चाहे वह हिंसा अतिक्रमण से हो, अयोध्या अयोध्या में हो अथवा आत्मरक्षा के लिए हो परन्तु शास्त्र से उसकी सम्मति नहीं ली जाती है। शास्त्र से सम्मत शास्त्र का उपयोग भारतीय जीवन का योग है। रामण और वाली का जो वध राम के द्वारा हुआ है वह इसी भूमिका के आधार पर हुआ है। सूर्यनखा का अगमग मा कंस की हत्या भी इसी कारण का संकेत करती है। समर्थ रामदासजी ने भी इसी भूमिका को लक्ष्य कर अर्थात् लोगों का वध करके महाराष्ट्र धर्म की रक्षा के लिए महाराष्ट्रीय जनता को अगाया। शास्त्र की रक्षा के लिए शास्त्र बसाने की सलाह दी। दर्शन और विज्ञान के मेल का आग्रह पंडित नेहरू इसी भूमिका के आधार पर करते हैं। वे कहते हैं कि यदि विज्ञान को जीवित रखना हो—विज्ञान से मानव-जीवन को सुखी बनाना हो—तो विज्ञान का संबंध दर्शन के साथ जोड़ देना चाहिए। अन्यथा विज्ञान और दर्शन का बिनाश होगा।

प्राचिन युग में धीरे-धीरे प्राणदान की घटना कुछ अघटित

भवदय प्रसीत होती है परन्तु ऐसी घनेक घटनाएँ कथा-पुराणों में हम पढ़ते हैं। सो समर्थजी की इस घटना को प्रामाणिक मासने में क्या हज है ? कदाचित्त समर्थजी के सहस्राने पर नील को धारम सतोप हुआ होगा और धारमसतोप ही मोक्ष माना जाता है। इस शास्त्रीय दृष्टि से हमें यह मानना होगा कि इसी धर्म में नील ने धारम जीवन वानी मोक्ष पाया होता। समर्थ मानी बड़ों की कृपा-दृष्टि से जिस प्रकार जीवन सपन्न एवं सुखी बनता है ठीक इसी प्रकार नील ने प्राणदान पाया होगा।

### दृष्टि-दान

जन्मदात्री माँ श्रीर घर-घार से बिलुङ्गने के बाद समर्थ रामदासजी लोक-कल्याण व जन जागृति में धपने-धायको भी भूल गए थे। सगमम चौबीस वर्षों के बाद जब एक बार वे र्वंठण गाँव में कीर्तन कर रहे थे तब श्रोताओं में कुछ ग्रामनिवासी भी उपस्थित थे। समर्थजी का कीर्तन सुनकर सब श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए। ग्रामनिवासी भी हरि-कीर्तन में लीन सुखदुःख लोए समर्थजी की जीवनदायिनी बाणी से जीवन प्राप्त कर बिभोर हो रहे थे। जब कीर्तन समाप्त हुआ तब इत्यार्थ भाव से वे समर्थजी की शरण में धाए। जब उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तब समर्थजी को तुरंत पहचान लिया और भीत अंत करण से परिधम पाने के हेतु समर्थजी की माता के पुत्रशोक एवं संभत्य का विह्व किया। समर्थजी ने माताजी की बुराबन्धा को जानकर तुरंत माता की सेवा में उपस्थित होने की अटूट इच्छा से जन्मभूमि जाव के लिए प्रस्थान किया। जब वे 'जय जय रघुबीर समर्थ' की घोषणा कर

श्रायण में सड़ हुए तब उनकी भावाऊ से ही बूढ़ी माता ने उन्हें पहचान लिया। जब वे 'नारायण' कहकर पुकार उठीं तब समर्थजी



दृष्टि-दान

उनसे बालक की तरह स्त्रियट गए। जी भर मिला लेने के बाद दोनों संतुष्ट हुए। मिलन से बहने वाली भ्रान्त्याभू की धाराएँ जब थम गईं तब समर्थजी ने अपनी धर्म माता को पून स्व से देखा। बिरह-बनित बर्जर भ्रमस्वा और भ्रंवल्य प्रसन्न हो गया। समर्थजी ने उनकी धर्मों पर हाथ फेरा। हाथ के स्पर्श से माताजी ने पुनः दृष्टि पाई और प्रसन्न होकर पूछा, 'बेटा, क्या सेवा



घीर जादूनतर में भी तुम पारगत हुए हो ? अथवा किसी पिशाच बाधा ने तुम्हें झपट लिया है ? '

समर्थजी ने अपने 'दासबोध' में इस प्रश्न का उत्तर समग्र रूप से दिया है । वे कहते हैं "हाँ माँ मुझे पिशाच ने ही झपट लिया है घीर यह अपनी झपट को ठरा भी ठीस देने के लिए तयार नहीं है । उसने मुझे इस प्रकार बस लिया है कि उस जकठ के बदले में सतोप ही संतोप पाता हूँ । यह पिशाच है बैकुण्ठबासी, प्रयोध्यास्थित बाणो का बभ्रुक, सुग्रीव का हितपी घीर चौदह वर्ष वनवास में रहकर जनता की सेवा करम बाला तथा पापाण का भी उद्धार करने वाला ।"

भूत-बाधा का यह बिदलेपण प्रकट करता है कि समर्थजी प्रभु रामचन्द्रजी के अनन्य उपासक थे । उनकी सेवा से उन्होंने अपने जीवन को सफल बनाया था । भक्तियोग की इस शक्ति के कारण ही माताजी को वे दृष्टि का दान दे सके । इस घटना को भी हम अघटित मान सकते हैं फिर भी हमें यह मानना पड़या कि सर्व भूत हित रत्न की भावना माता में निमित्त हुई होगी घीर यह भावना ही अंतरदृष्टि की जागृति का कारण बन सकती है ।

### बुद्धि की कसौटी

मैं राँधता हूँ विल खोल  
कल्याण खाता है जनमानस ।  
बुद्धि छोड़ जाता है जब  
साधर करता हूँ कीर्तन तब ।

एक बार समर्थजी कीर्तन के रंग में रंग गए थे । समर्थ सिष्य

कल्याण स्वामी साथ द गृह्य । ध्वन मा धर्मग को उभार कर माने स समयजी का वाणी में एक प्रकार के छेज का निर्माण हुआ था । कीर्तन की समाप्ति पर समयजी न कीर्तन की बहार का उपरोक्त स्पष्टीकरण किया जिसे मुनकर दगा दग रह गए । सोचने लग 'कल्याण निरा गंवार है । वह ध्वनकारा समयजी की सामर्थ्य का भी नहीं जानता । वे स्वयं रोषते हैं पर यह वाल भात में मूसरबद बनकर पूरा भोजन प्रकल्प निगल जाता है और समयजी वचा-मुचा झूठन खाकर अपनी सबाएँ पूण करत हैं जिमम हम पावन बन जात हैं ।

गर्तों की इस बाकलोला को ननक जब समयजी का लगी तब उन्हें दुःख हुआ । उन्होंने अनुभव किया कि बौद्धिक स्तर ऊपर उठाए बिना धनता से प्रवेदित ज्ञान नहीं लिया जा सकता । यदि समाज ऊपर न उठ सका तो भक्तिभाव और गुद प्रत करण होते हुए भी ध्यान क कारण वह नाहक कुचला जाएगा । धर्म प्रापका स्वयं नाश कर लेगा । यदि मैं उक्त ध्वन का प्रर्थ स्पष्ट न कहेंया तो समय वासे वेसमक वाला से दुणा करेंगे । यह सोचकर समयजी न दूसरी बार कीर्तन में पुन उस धर्मग को गाकर उसके भावाम को समझाया तब कहीं गिष्य कल्याण की योग्यता का पता बुद्धिहीनों न जाना । समयजी ने बतलाया—

‘मै रचना करता हूँ । कल्याण उन्हें कळस्प करता है और कीर्तन में गाता है इसीलिए कीर्तन में बहार पाती है ।’

### आत्मसाक्षात्कार

समयजी की वषुबाई नाम की एक शिष्या थी । उसकी निष्ठा

सेवा और त्याग बेशक समर्थजी उस पर प्रसन्न थे। यों तो कार्य बस महाराष्ट्र का प्रत्येक शिष्य या महंत स्वामीजी से किसी भी अवसर पर कहीं भी मिल जाता था। पर रामनवमी के अवसर पर सभी शिष्य और महंत समर्थजी के पास आफ़ठ में इकट्ठा होते थे। एक बार मानो बकी-माँदी बेगूबाई प्राणों को लिए केवल समर्थजी से मिलने और प्रभु रामचन्द्र के उत्सव में प्रतिम बार शरीर होना है इस भावना से आई। जब यह समर्थजी के चरणों से छिपट गई तब समर्थजी ने उससे पूछा 'क्यों बक क्यों गई हो? क्या चाहती हो?'

माप सर्वसाक्षी हैं। आपको सभी इच्छा-अनिच्छाओं का पता है। मुझसे क्यों कहलाते हैं?' बेगूबाई ने जबाब दिया।

'सो तो मैं जानता हूँ कि तुम अब इस शरीर का त्याग करना चाहती हो। पर तुम्हें दो बर्ष अनुज्ञा नहीं दी जा सकती।'

बेगूबाई बोली "वस्तुतः मैं इस उत्सव में प्रतिम बार शरीर होकर और आपसे मिलकर शरीर त्याग करना चाहती थी। परन्तु अब मैं आपकी आज्ञा को किस प्रकार टाल सकती हूँ। यद्यपि अब शरीर में प्राण नहीं रहा है। उसके त्यागने पर ही उसकी मलाई है।"

क्रम के अनुसार दूसरे बर्ष भी बेगूबाई उत्सव में उपस्थित हुई। आपसे ही समर्थजी से प्रायमा कर उसने आज्ञा चाही। परन्तु समर्थजी ने इतना ही कहा, आज नहीं।

प्रतिदिन यही होता रहा। अंत में हताश हो बेगूबाई ने बड़े आग्रह से कहा "आज अनुज्ञा मिलनी ही चाहिए।"

समर्थजी ने कहा, ठीक है। आज तुम शरीर त्याग सकती हो

परन्तु ग्राम को कीर्तन व पदपात् ।

बेणूबाई ने सहस्र मुक्तों से धन्यवाद दिया और प्रसन्न प्रतिकरण से दैनिक कायक्रम आरम्भ किया ।

समयजी ने दूसरी शिष्या भक्ताबाई को बुलाकर कहा, "भाज बभूबाई को विदा करना है । इसलिए कुछ मीठा खाना पके ।"



भारतसाक्षात्कार

खाना पकने पर मिष्टान्न भोज हुआ । बेणूबाई को विदा करने के हेतु सब शिष्यों के साथ-साथ समयजी ने भी भोजन पाया । बभूबाई दिनभर सबसे प्रसन्नतापूर्वक मिलती रही । यवन

पूजन कथा प्रबचन में हिस्सा लेती रही। जब शाम के घाठ बजे और कीर्तन प्रारम्भ करने का समय हुआ तब पुन वेणुवाई ने समझजी से अनुज्ञा माही। समझजी बोले 'भाज तुम्हें कीर्तन करमा है। कीर्तन के पदवात् तुम स्वतंत्र हो।

समझजी की भाशा पा वेणुवाई ने पूरे दो घंटे कीर्तन किया। कीर्तन में जो पद गाए या जो घुंटाते दिए उनका डग कुछ घसीकिया। कीर्तन में सुखसुख भूली वेणुवाई एक रूप हो गई थी।

कीर्तन समाप्त हुआ। प्रभु रामचन्द्रजी की धारती उवारी गई और 'श्री राम जय राम जय जय राम का अंतिम निर्घोष कर वेणुवाई प्रभु रामचन्द्रजी के धरणों से लिपट गई और उसने अपने धरीर का त्याग किया।

घट्ट इच्छा और मनोनिग्रह की यह अलौकिक घटना एक अमत्कार ही तो है। मनभसे भौतिकवादी भी इस पर धार्शका नहीं उठा सकते। यदि वे इस तर्क-संगति को अधिक बिस्तार से जानना चाहते हों तो अपने बुद्धों से पूछें कि पुरान जमाने में क्योंकर अपनी मृत्यु को लोग देख सकते थे और इच्छा के अनुसार किस प्रकार मृत्यु का स्वागत करते थे।

### कुबड़ी तीर्थ

किसी राजनीतिक उद्यमन को सुलझाने के लिए शिवाजी राजा समझजी से मंत्रव्य करने के बास्ते रायगढ़ से भापळ की ओर रवाना हुए। अल्दी थी इसलिए भूस-प्यास की विता न कर वे तुरंत चल दिए थे। दिनभर चलते ही रह। गरमी के दिन थे। घोड़ा भी इसलिए परेशान था कि कहीं मालिक को देरी न हो।

तेज दौड़ने से वह भी पसीने से तर हो गया था।

समथजी ने मन ही मन शिवाजी की यह अवस्था जाना। महाराष्ट्र धर्म के वर्धन में देर न हो और जाने वाले संकट से शिवाजी भयभीत होंगे इस विचार से व भी तत्काल निकसे। दो तीन मील के फाससे पर ही वे एक-दूसरे से मिले।

अज्ञानक समथजी को सम्मुख देख शिवाजी आश्चर्य चकित हुए। नमस्कार भमत्कार के बाद (यथोचित मान-सम्मान के बाद) शिवाजी राजा कहने लगे 'मैं परामश के लिए आप ही के पास आ रहा था। अब यहीं कहीं मित्रता स्थान में बैठेंगे। लेकिन मुझे प्यास ने बहुत सताया है। ठीक तौर से बोल भी नहीं सकूंगा।'

समथजी ने कहा, 'सो तो मैं जान ही चुका था। इसीलिए तो आ निकला।' यह कहकर अपनी कुबड़ी (सन्यासी की साठी-विशेष) से उन्होंने एक बड़े पत्थर को पलट दिया। उसे ही पत्थर पलटा वस ही भूमि से एक साफ और सुन्दर झरना बह निकला।

यह देखकर शिवाजी राजा अवाक रह गए। उस साफ-सुधरे झरना का प्राशन करने के बाद उन्होंने विशेष स्वस्थता का अनुभव किया।

वार्ता विलास में अफ़ज़लखान के आगमन का हेतु, उससे किस प्रकार मुकाबला करना चाहिए प्रत्यक्ष युद्ध करने पर हमारी दाल तो नहीं गसेगी वरन् हमारा विनाश हो जायगा, अतः उसका स्वागत कर उसको संतोष दिला, मिलने के बहाने एकान्त में बध करना ही उचित होगा, यदि यह काम न बन सका तो प्रतापगढ़ की घाटियों में अपनी सेना छिपाकर तोप की आवाज सुनते ही आवा बोलने के लिए तैयार रहना, स्वागत और सत्कार की

सामग्रियों की घपन गुप्त दूर्तों से जानकारी प्राप्त करना, चादि सूचनाएँ समयजी ने ही और शिवाजी रामा को विदा किया। पाठकों को पता होगा कि इन्हीं सूचनाओं के अनुसार शिवाजी ने अफ़्जलखान का वध किया।

समर्थजी की कुयड़ी से पानी का ऋरना जहाँ फूट पड़ा था उसी स्थान को कुबबी तीर्थ करते हैं। वह आज भी मौजूद है और मूले मटकों का राह दिखाता है—जैसे समर्थजी ने शिवाजी को माप दिखाया था।

यह स्थान और यह कथा मनगढ़ंत समझी जाती है। भास्तिफ माव से समर्थजी को मुगपुरुष समझने वाले इस घटना को अमत्कार समझकर इस स्थान का धावर करते हैं। परन्तु कुछ लोग इसे 'मूलता कहकर धर्म-धर्या पर लीला व्यग कसते हैं और अपने विज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। लेकिन वे यह नहीं जानते कि समर्थजी नियमित रूप से दो हजार डंड उगाते थे। वे अति-सम्पन्न थे। आजीवन नगवर्ग रहकर आठप बीत और वर्षों को सहकर उहोंने शरीर के प्रत्येक अवयव को मजबूत बनाया था। उनकी कुबबी भी लोहे के समान भारी भरकम थी। इसके अतिरिक्त पहाड़ों की ढलानों में पानी का प्रवाह भूमिगत रूप से बहता भी रहता है। इन सामान्य घटनाओं को यदि हम जान लेंगे तो हमें बिश्वास होगा कि यह कुयड़ी तीर्थ कोई अमत्कार नहीं, एक वास्तविक घटना है। अति-सम्पन्न समर्थजी ने भारी भरकम कुबबी से पथरीय ढलान का बड़ा पर्यर पलटा और वह भरना फूट पड़ा।

## दोहन

समर्थजी अपने शिष्यों के साथ भ्रमण के लिए निकले थे । एक वन प्रदेश में घास-पास बहुत प्राप्त थे । उस वन प्रदेश को यथोचित जानकारी प्राप्त कर उसे धर्म और राज्य-स्थापना का धर्मका पगाना नीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य था । यह कार्य एक धार मापन देकर मजबूत गाकर धर्मवा कीर्तन सुनाकर बनाने वाला नहीं था । उस प्रदेश में कुछ महीने बिताने की आवश्यकता थी । अतः एक ग्राम में एक निःसंतान परन्तु धार्मिक बुद्धिया के यहाँ वे सब निवास कर प्रचार-कार्य में लग गए ।

बुद्धिया के यहाँ वे भसे थीं । वे काफी दूष देती थीं । उसी दूष से वह अपना गुजारा और धर्म्यागतों का स्वागत करती थी । अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के अनुसार भक्तिभाव से उसने एक-दो दिन उन्हें क्षिप्या पिलाया । पर जब उसने यह जाना कि समर्थजी कुछ महीने यहाँ निवास करना चाहते हैं तब कहा 'महाराज धार तो बतते ही हैं कि मैं बुद्धिया हूँ । धार बड़े धामन्द के साथ यहाँ रह सकते हैं । पर धर के कामों में हाथ बँटाएंगे तब ।'

बुद्धिया की बात सुनकर समर्थ शिष्य कल्याण स्वामी ने धारस म काम का बँटवारा किया । सब काम यथासमय होने लग और धारस-पडोस के धारों में प्रचार शुरू हुआ ।

एक शिष्य के शिष्ये भैरों को धराने का काम दिया गया था । अर्थात् वह प्रचार-कार्य से छुट्टी पाता था । क्योंकि उन भैरों के बरु पर ही वे श्ला-पी सकते थे । एक दिन वह शिष्य 'दासबोध की छुट्ट धरों से नकल उतारने का काम एक पेड़ के नीचे बँठकर कर रहा था । भैरों दूर धरनी में धरती थी । कहीं से धर धरना



घोर वह एक बछड़े को चट कर गया। शिष्य महाराज 'दासबोध' के गहन ध्य को सुरुआते हुए अपने ध्यान में लीन घटे रह। उसी प्रबन्ध में संभ्या समय वे घर लौटे।



बोहन का मोह—प्रेम

जब भैसों के बोहन का समय हुआ तब बुढ़िया बछड़ों को मोलने गई। उसे पता चला कि एक बछड़ा गायब है। उसने शिष्यजी से पूछा पर शिष्यजी बगलें झँकने लग। जब बुढ़िया फोड़ित होकर बोली कि धर्मो-धर्मो मेरा बछड़ा ला दो वरना घमसे बनो तब कल्याण स्वामी उसे दूढ़ने गए। लौटकर उन्होंने उसकी मृत्यु की खबर सुनाई।

बुढ़िया बिड़ गई। कहने लगी 'मरे लाते तो बेरों ह। जब

पता चलेगा कि कहीं और कौन इस प्रदेश में खिसा पिना सकता है ?”

एक शिष्य ने सुझाया 'बला एक भैंस के दूध पर ही आज की रात काट दिये।' यह कहकर दूसरे बछड़े का स्तनपान कराने के हेतु छोड़ दिया। पर वह बछड़ा भी दुःखद अन्त करण से अपनी माता की गोद से सटकर सड़ा हो गया। दूध पीना मानो जानता ही न हो।

भैंसें बेचारी अपनी माया में अपना हार्दिक दुःख प्रगट कर रही थीं। उनके स्तन प्राकृतिक नियम के अनुसार दूध से फट जाना चाहते थे जिससे वे परगान थीं। इस अवस्था का देख बुढ़िया जल-भुनकर बिस्लान रुयो, "सरयानाधिया ! तुमने मेरे जीवन का बरबाद कर दिया। अब मैं कैसे जीऊँगी। इसी क्षण दयाकर मरी भैंसों से दूर हट जाओ।"

समर्थजी बड़े चुपचाप देख और सुन रहे थे। उन्होंने उन भैंसों को घराने वाले शिष्य से कहा 'अरा हाँडा सेकर दोहन ठो करो।' शिष्य ने हाँडा उठाया और भैंसों के पास उन्हें महत्ताकर बुहने के लिए नीचे बैठ गया। जैसे ही उसने दूध दुहना शुरू किया वैसे ही व भैंसें पूबवत् दूध देने लगीं। यह देख बुढ़िया चौंक पड़ी। उसने अनुभव किया कि ये साधू ऐसे-बसे नहीं हैं। उस मासूम का कि विना बच्चे के गोए अथवा भैंसें दूध नहीं पती हैं।

बुढ़िया भक्तिभाव से समर्थजी की धरण में आई और उनसे अनुग्रह पाकर मोक्ष की अधिकारिणी बनी।

इस बमत्कार से अनेकों धार्मिक अनुसंधानों का पता हम रग सकता है। (१) भैंसों का आचरण। अपने बालक के सा

जाने पर जिस दुःख का अनुभव माता करती है वह पूर्ण मात्रा से उसमें था। (२) उस दुःख का परिताप उसी की हृद तक सीमित नहीं रहा परन्तु उसके प्रति जो संवेदना दूसरी भैंस ने दिखाई वह भी प्रबुद्ध है। (३) मासुवत स्नेह करने वाले घरवाहे शिष्य के सहजाने पर उसका हादिक भाव को जानकर दूध देना। (४) बड़िया का जानवर के प्रति स्नेह (५) और समर्पजी द्वारा किया हुआ स्नेह का अनुसंधान।

ये सारी बातें कवि-कल्पना को मने ही स्वीकार न हों परन्तु भारतीय मनोविज्ञान के अंतर्गत आती हैं। पुत्र-स्तोक से माता का बिलसना स्वाभाविक है। माघ-साघ माता की व्याकुलता का परिणाम दूसरी भैंस पर भी होना पड़ोसी धर्म के नाते धार्मिक रूप धारण करता है। परन्तु अपनी प्राकृतिक प्रकृति और घरवाहे का स्नेह तथा मासुकिम का प्रेम भी वैसे भूल सकती हैं। जब बाँध भैंस और गीरे भी प्रसीत स्नेह के वश होकर दूध देती हैं तब ये घटनाएँ बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अगर कोई बात हो तो वह है समर्पजी का मनो वैज्ञानिक अनुसंधान जिसके कारण प्रकृति का स्वाभाविक दर्शन प्रनायास हो उठता है। और फिर उस दुःखटना का निवारण भी होता है जिसके कारण भविष्य में अनक दुःखटनाएँ होने की सम्भावना थी।

पाठकों को ज्ञात होगा कि घाजकस यंत्र के सहारे स दूध दुहा जाता है। पशु अधिक देर तक स्तनों में दूध नहीं रोक सकते और यंत्र से उनके बल में वसी ही गुदगुदी उत्पन्न की जाती है जैसी बछड़ के स्पष्ट से होती है। जब इन प्रयोगों से घाजकस

दूध दुहा जाता है तब उस समय भी इन्हीं उपायों का पालन हुआ होगा। अतः यह घटना शास्त्रीय दृष्टि से चमत्कार-युक्त नहीं बन सकती। लोग भले ही देवी अथवा अनहोनी घटना के रूप में उसकी ओर देखें।

अनंतर उस वनप्रवेश की समयजी ने घम और राज्य स्थापना के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान सिद्ध किया। यह एक चमत्कार बन सकता है परन्तु सपस्या और जनहित की लगेन ही उसका मुख्य कारण है। दोहन की शक्ति और रूप को जब हम समझेंगे तब ध्यान भी यह चमत्कार दिखाया जा सकता है।

### पोतना के मारा

अमण और मिश्रा समर्थ-जीवन के प्रमुख दो अभिन्न कर्मांग थे। इन कम क अगों से सामाजिक पुरुष की व्यथा को जानकर इलाज का अनुपात सोचा जाता था। इसलिए अमण और मिश्रा का बंधन प्रत्येक महत् पर लागू था। साथ-साथ स्थानांतर के बंधन का पालन भी अनिवार्य था। जिससे समाज-पुरुष के सारे भवयों का निरीक्षण, अभ्ययन और अनुपात व परिमाण की योजना हो सके।

एक बार समयजी एक कस्बे में पहुँचे। कस्बे की रचना बड़ी सुन्दर थी। पास में प्रसस्त नदी का प्रवाह, पेड़ों की घनी छाया, कस्बे के बाहर हनुमानजी का मन्दिर। निसर्ग की प्रसन्नता की छाया कस्बे की स्वस्थता पर पूरा रूप से दिखाई देती थी। कस्बे के इस रूप को देखकर समयजी बड़े प्रसन्न हुए।

नहा-धो सेन के बाद हनुमानजी के मन्दिर में ब्रह्मकर्म समाप्त

किया और दो हज़ार डंड लगाने पर भिक्षा के लिए वे कस्बे में चले गए। एक धानदार कोठी को देख मुख्य द्वार से होते हुए आंगन तक पहुँचे। भिक्षा के प्रवसर पर वे अपने रथे हुए 'मनोबोध' के धर्मग गाते थे जिसे सुन नास्तिक मनुष्य भी आकर्षित हो जाता था। एक धर्मग को पूण कर समर्थजी ने ग्यारह प्रक्षरों वाले मुद्रमंत्र को दोहराया पर धर से न कुछ धावाब पाई और न किसी ने आकर भिक्षा दी। तब समर्थजी ने दूसरा धर्मग शुरू किया। जैसे ही वह पूण हुआ वैसे ही एक स्त्री सम्मुख खड़ी हो विस्लाती हुई बोली—

'सुनते नहीं हो? सात बार कहा कि मैं काम में लगी हूँ। पर पुन वही जय-जय रघुवीर समर्थ की रट। क्या कहते हो?' यह कहकर उसने पोतने को दे मारा। समर्थजी दांत भाब से सोटे।

दो दिनों के धंवर-घट्टर समर्थजी की घोर दिनचर्या, तपस्या से प्राप्त मन्त्र तेज और कीर्तन की दिव्य बाणी को सुन सारा कस्बा प्रभावित हुआ।

उस स्त्री ने भी अपने स्वभाव के अनुसार एक साधु की किस प्रकार मरम्मत की है यह घटना बड़ा चढ़ाकर अपनी सहेलियों से पहले ही कह सुनाई थी। धीरे-धीरे यह समाचार सारे गाँव की स्त्रियों तक पहुँचा। कुछ पुरुषों ने भी इसे जान लिया। तब पुरुषों को बड़ा खेद हुआ। सब पुरुष उस स्त्री की धनहेमना करने लगे। अंत में समर्थजी की सामर्थ्य को परख न क्षमा-याचना करने के लिए समर्थजी की सेवा में उपस्थित हुए। उनकी बात सुनकर समर्थजी दांत एवं गम्भीर हाकर बोले—

“भाइयो मनुष्यों के द्वारा जो भी कम होते हैं वे सचित भावमात्रा के आधार पर ही हात हैं। यदि सचित भावनाएँ दूषित हों तो उन दोषों का परिहार करने के लिए सत्कर्मों का आश्रय लेना चाहिए, जिससे भावी जीवन सुखी बनता है। यदि उनका परिहार न हुआ तो मनुष्य की दुष्कीर्ति बढ़ती है और वह दुःख भोगता है। फिर चाहे वह धन-संपन्न ही क्यों न हो। अतः गबन कर मत् का आश्रय लेना ही मनुष्य-जीवन के लिए हितकर है।

तत्र त बुद्धितपोयं लभते पौर्बेहिजम् ।

यतते च ततो मूमः ससिद्धौ कुवन्नम ॥

गीता ९-४३

समर्थजी के इस भाषण से लोग प्रभावित हुए। उनमें वह स्त्री भी थी। तुरन्त समर्थजी के शरण छूटना-याचना करने लगी। समर्थ बोले—

“बहनजी, तुम किसी अवस्था में दोषभाजम नहीं हो। क्योंकि तुमने मुझसे कहा था। सुन न पाने के कारण मैं ही शर्मग गाता रहा। और फिर तुमने जो पोटना मुझे समर्पित किया वह मेरे बहुत काम आया। शिक्षा माँगकर प्रभु रामचन्द्रजी को नैवेद्य तो मैं बढ़ा सकता हूँ। पर धारती उतारने के लिए बाती की हमेशा कमी रहती है। तुम्हारे इस पोटने को धो धाकर मैंने साफ किया और उसके धागों से मैं वातिया बना सका।”

समर्थजी का यह निवेदन धर्म रक्षा की चेतना का भर सका। वह सारा गाँव समर्थजी की साधना में भरसक योग दे सका।

आत्म-संवेदना के इस चमत्कार को वही जान सकता है जो धर्म, समाज और राज्य संगठन के मूल मंत्र को जानता है।

## अज्ञान का सुख

महादेवी के मतानुसार दुःख को सुख मानने के लिए विद्वान् मन की आवश्यकता होती है और वह विद्वान् मन महान् प्रयत्नों के बाद बनता है। फिर भी मन की दुविधा दूर नहीं होती। हम भले ही महानों की दुविधा दूर हुई। और दुःख को ही हम सुख मानते हैं। पर मानव-जीवन के लिए यह दुर्बोध है। मात्र इसके विपरीत अज्ञान का सुख प्रत्येक मनुष्य पाता है। क्योंकि आघात प्रत्याघातों के परिताप से वह अवोध होता है। होनहार नहीं टाला जा सकता—किस्मत में जो लिखा है वह होकर ही रहेगा—यह उसकी घटल धारणा होती है। इसलिए वह अपने-आप सुखी बन जाता है।

समर्थजी के शिष्यों में भोळाराम नामी एक सधमुष भोला भाला शिष्य था। बेसमझ तो था ही, सुस्त भी काफी था। दिन में भी भष्टों सोता था। इन सारे दुर्गुणों के बावजूद भी ठरों साता था और फिर किसी काम का नहीं था। उससे कहा कुछ जाता था वह सुनता कुछ था। अन्त में साधार होकर अब समर्थजी औरंगाबाद पधारे तब उसके पिताजी ने उसे समर्थजी को सौंप दिया।

नदसक छोटे बड़े, बड़े बीमार अपाहिष  
सब भाए लहपात में उठार बाए जंतों से।

सर्वों की इस नीति के अनुसार समर्थजी ने बड़े प्रेम से उसे आश्रय दिया। इतना ही नहीं किसी के द्वारा उसका अनादर भी न होने दिया। अस्वहवास और प्रेम पाकर उसकी समझदारी बढ़ने लगी। क्योंकि वह समर्थजी की सेवा करता रहा।

भूमि का विहीना सुपुत्र के लिए,  
सिंहाना लेकर रामनाथ का।

घोड़ना बिशाघों का घोड़कर,  
घाग का सुतगाला घीत के समय ॥

भाजीवन इसी अवस्था में रहने के कारण बुढ़ापे में समर्थजी साँसों के मारे बीमार रहने लगे। फिर भी दैनिक कायक्रम में किसी प्रकार का अंतर नहीं होता था। मात्र साँसी बढ़ने पर झुकने के लिए वे पीक्यान का उपयोग करने लगे। इस अवस्था में एकनिष्ठा से सेवा करने वाला मोलाराम ही ऐसा शिष्य था कि जो किसी काम को रत्तोमर भी टासने की कल्पना तक न कर सकता था।



पद्मल का सुख



पहली ही बार पीकदान के कफ़ को बाहर फेंक देने की उसे प्राना देते हुए समयजी न कहा, देखो, ऐसे स्थान पर यह फेंक दो जहाँ कहीं प्रादमी न हो। परन्तु जल्दी लौटो।

जब भोलाराम पीकदान को बाहर ले गया तब इधर-उधर सब प्रादमी ही प्रादमी उसने देखे। जल्दी लौटने की चिंता में पीकदान का कफ़ उमने अपने पेट में ही डाल लिया। पर मठ को लौटते ही मतली सी होने लगी। बच्चा किसी से कह भी नहीं पाया। अंत में जब ऊँ हुई तब उसने अपने गुरुबंधु से उक्त घटना सुनाई। जब यह समाचार समयजी को ज्ञात हुआ तब उन्होंने उसे बुलाया। बच्चा भीत अंत करण से उपस्थित हो गरदन झुकाए खड़ा रहा। समयजी ने धीरे-धीरे बच्चे से कहा 'बेटा, यह सही है कि मैंने तुम्हें जल्दी लौटने को कहा था। परन्तु इसका मतलब यह नहीं था कि कफ़ को निगल जाओ। खैर! प्रभु रामचंद्रजी की कृपा से तुम स्वस्थ हो जाओगे।' यह कहकर समयजी ने उसके सिर पर अपना बरदहस्त रखा।

पीकदान का भरा हुआ दोपयुक्त कफ़ भोलाराम हजम कर गया। यही कारण है कि भोलाराम प्राग चलकर एक विद्वान महंत बना।

पाठक यह समझ लेंगे कि समयजी के बरदहस्त से ही भोलाराम कफ़ को हजम नहीं कर सका अपितु उसकी अपनी शक्ति ने भी साथ दिया। यदि भोलाराम की प्रपक्षा कोई दूसरा शिष्य उसे निगलने का साहस करता तो वह निश्चय ही मर जाता। क्योंकि वह कफ़ अस्थिमा का था।

अज्ञान में मनुष्य हमेशा स्वस्थ रहता है। अज्ञान के कारण

गति की सम्भावना लिखे-पढ़ों की दृष्टि से भले ही हो पर भ्रमानी को पता है वह लाभ ही लाभ या सुख ही सुख होता है। क्योंकि दुःख से वह चिंतित नहीं होता। यदि मोलाराम भ्रमानी न होता तो क्या महत् बनता ?

### रागी बिरागी

दक्षिण हैदराबाद राज्य के एक जागीरदार समर्थजी के प्रिय शिष्य थे। वे महान बिरागी और उच्चकोटि के ज्ञानी थे। जागीरदार होने के कारण वे हमेशा ठाटबाट से रहते थे।

सयोगवश एक बार भ्रमण के भवसर पर वे समर्थजी से मिले। उनका बाना और नीकर-चाकरों को देखकर समर्थ शिष्य मन ही मन सोचने लगे 'रंगनाथ स्वामी अपने को भले ही बिरामी कहें पर हैं तो रागी।'।

समर्थजी ने शिष्यों के भाव ठाढ़ किए और उन्होंने रंगनाथ स्वामीजी से कहा, 'पंडितजी, अब आप बिरागी बनकर रहना सीखें। लाइए अपनी वह मूल्यवान पोशाक और पहन सीखिए केवल संगोटी।'।

रंगनाथ स्वामी ने बहुत झण्टा' कहकर सारे धामूपण और जरीन वस्त्र उतार कर स्वामीजी के स्वाधीन किए और संगोटी सगाकर बैठ गए।

उनकी पोशाक और खेवरों को अपने पास रख समर्थजी भिक्षा मांगने के लिए पड़ोस के गाँव में पहुँचे। सौटने पर उन्होंने देखा रंगनाथ स्वामी पहले से भी मूल्यवान वस्त्रों एवं धामूपणों से सज-धस कर बैठे हैं।

समर्पजी ने कारण पूछा तो रंगनाथ स्वामी के एक शिष्य सरदार ने कहा ' महात्मन, हम यहाँ से मुबार रहे य । भगवान की कृपा से गुरुदेव के दशन हुए । हमारे रहते इनका इस अवस्था में रहना हमारे लिए शोभा की बात नहीं है । गुरुदेव ने बहुत-कुछ इनकार किया लेकिन आग्रहपूर्वक यह पौदाक हमने पहना दी । ये आम्रुपण भी । मला इस सत्तार में हमारा अपना क्या है । जो कुछ है वह गुरुदेव की कृपा है ।'

रंगनाथ स्वामी ने कहा मैं भले ही बढ़िया वस्त्र पहनता हूँ पर मुझे बढ़िया वस्त्र प्यारे नहीं लगते । और फिर क्या मूस्यवान और क्या मामूली । दोनों की अवस्था शरीर के लिए समान है । यदि इस प्रकार भगवान आगीरवार के ही ठाठ में रहना चाहते हों तो इनकार करने वाले हम कौन होते हैं ? हाँ यदि हम किसी प्रकार भगवान के विरुद्ध निकामत करें तो निश्चय ही मुनहगार सिद्ध होंगे । इसके अतिरिक्त मनुष्य मन से विरागी होना चाहिए । मन अगर रागी हो तो ऊपरी विराग उसके लिए कोई काम न देगा । अगर मन विरागी हो तो क्या राज्यपद और क्या सेवकाई दोनों उसके लिए बरखर होते हैं । असल में मन विरागी होना चाहिए । बैराग्य की देन बाहरी देन नहीं है । बाहरी देन से मनुष्य के विराग की परीक्षा असभव है ।

आपसे मुझे कुछ कहना नहीं है । क्योंकि आप सबसाक्षी हैं और फिर मेरे परम देवता गुरु । आज्ञा के अनुसार वस्तुस्थिति को स्पष्ट किया है । सो क्षमा ।'

रंगनाथ स्वामी का यह भाषण सुनकर समर्पजी के शिष्य मन ही मन अजिजठ हुए । उनको अतरात्माएँ अपने-आप मुक गईं ।

धर्मर रगनाथ स्वामी के शिष्य सरदार वस्तुस्थिति को न घटाते और यदि वहाँ न होते तो देखने वाले यही कहते कि यह एक चमत्कार है। क्योंकि जो मनुष्य केवल सगोटी पहन जंगल में रहता है वह बड़िया वस्त्र व धामूपण किस प्रकार पा सकता है। इस घटना में असली चमत्कार है जीवन विषयक शिक्षा जो धामकल शब्द या प्रवर्धन मात्र से दी जाती है। यदि समर्थी मानसिक शक्तियों को ताककर दूसरों के द्वारा उन्हें दूर भेजकर ता बिरागी होकर भी शिष्य रागी रह जाते।

### परीक्षा का अजीब ढंग

राजाश्रय और समाजाश्रय प्राप्त होने के बाद समर्थजी के पास अनेक शिष्य इकट्ठा होने लगे। समर्थजी का शिष्य बनने पर मान-सम्मान बढ़ता था और खाने-पीने में किसी बात की कमी नहीं रहती थी। समर्थजी आश्रय तो सबको देते थे और योग्यता के अनुसार उनसे काम भी लेते थे परन्तु जो केवल मोक्ष-वशु बनकर रहना चाहते थे वे बहुत जल्द वहाँ से छिसकाए जाते थे।

एक अवसर पर अनेक शिष्यों का मेला देख समर्थजी ने एक नग्न लसवार उठाई और हर किसी पर मारने के लिए मलटने लगे। समर्थजी का क्रूर और तमतमाता चेहरा देख 'समर्थजी दीवान हो गए' कहकर कुछ शिष्य वहाँ से बल दिए। कुछ डरपोक होने के कारण प्राणों को लिए छिसक गए। कुछ इधर-उधर छिप गए। मठ में केवल गिने-चुने शिष्य रह गए। उनमें से एक समर्थ शिष्य कल्याण स्वामी को यह समाचार सुनाने के लिए खाना हुआ। खबर पाते ही कल्याण स्वामी घटनास्थल पर पहुँचे।

जब वे समर्थजी के पास गये तो उन पर भी तसवार तानकर समर्थजी बोले 'मैं तुम्हें मार डालूंगा।' ब्रह्माष्व स्वामी विनत हो



एक शिष्य की परीक्षा

बोले "भवस्य, मैं मरने के लिए प्रस्तुत हूँ।" यह कहकर गरबन मुझाए खड़े रहे।

उसी क्षण समर्थजी ने अपनी तसवार म्यान में कर ली। समर्थजी का मठ निबन्धे शिष्यों से मुक्त हुआ।

एक बार समर्थजी जोर-जोर से कराहने लगे। प्रत्येक शिष्य

बड़ी आत्मीयता के साथ पूछताछ करने लगा। समयजी बोले  
 “बाबा, अब मैं बुढ़ापे के कारण अक्सर बीमार रहता हूँ। पोटरी  
 में एक बड़ा फोड़ा हुआ है। उससे होने वाली वेदनाओं से मैं त्रस्त  
 हो गया हूँ।”

एक शिष्य बोला, “क्या माछिन कर दूँ ?”

दूसरा—“अरा सेंक दूँ ?”

तीसरा—“राजबंद्य को बुझाऊँ ?”

समयजी बोले, “भा बाबा, किसी उपचार की आवश्यकता  
 नहीं है। यह शरीर भोग है और उसे भोगना ही चाहिए। अगर  
 कोई इस फोड़े को चुस लेगा तो कदाचित्त मैं स्वस्थ हो सकता हूँ।  
 पर चुसन वाला सुरत मर जाएगा।” यह कहकर समयजी पुनः  
 कराहने लगे।

दिन रात कराहते वे सब सारे शिष्य चिंतित हुए। पर किसी  
 में यह हिम्मत न हुई कि उस फोड़े को चुसे और समयजी के लिए  
 अपने प्राणी को खोए। जब यह सब समय कल्याण शिष्य ने  
 जानी तो वह तुरंत समयजी की सेवा में उपस्थित हुआ और  
 फोड़े को चुसने के लिए अनुज्ञा चाहने लगा। समयजी बोले “क्यों  
 नाहक अपने प्राण गँवाते हो ? यदि मैं मर गया तो अब कुछ विशेष  
 हानि होने की आशंका नहीं है क्योंकि मैंने भीवित काय किया है।  
 और वह सफल भी हुआ है। अमसत्ता की स्थापना हो चुकी है।  
 अतथायियों को उचित दण्ड मिला है। स्वराज्य के कारण स्वधर्म  
 की रक्षा में अब किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हो सकती।  
 महापट्ट भवन ध्यान से परिपूर्ण है। अब मैं शरीर को क्यों कष्ट  
 पहुँचाऊँ ?”

कल्याण स्वामी ने कहा, "नहीं महारामन, मैंने अनुभव किया है कि यद्यपि स्वराज्य और स्वधर्म की स्थापना हुई है परन्तु उनकी रक्षा का प्रबंध अभी खोप है। जब तक वह प्रबंध नहीं होगा तब तक यह शरीर कैसे त्यागा जा सकता है?"



कल्याण शिष्य ने समर्थ-वर पाया  
समर्थजी ने कहा, "भाई, यह कार्य किसी एक व्यक्ति के जिम्मे सौंपने पर नहीं बन सकता। धर्म और राष्ट्र के प्रत्येक अभिमानी की सिद्धता पर यह कार्य अवलंबित है। जन-जागृति जितने प्रमाण में बनी रहेगी उतने प्रमाण में यह कार्य सफल होगा।"

कल्याण स्वामी बोले, "जन-जागृति के लिए तो आपको कुछ दिनों तक यह शरीर लिए रहना ही होगा।" यह कहकर वह लोहरी का फोडा बूझने लगा। यद्यपि समर्थजी ने साल मना किया,

डरया भी ।

जब कल्याण स्वामी पूरा फोड़ा घुस चुके तब बोले, "महात्मन, इस प्रकार धगर रोखाना दस-याँच फोड़े हो जाए तब तो मैं समझूँगा कि मेरे भाग खुर गए ।' समर्थजी हँस दिए ।

पाठक समझ चुके होंगे कि यह बमत्कार परीक्षा लेने और सिष्य को निम्नी कृतियों के परिज्ञान की शिक्षा देने के लिए समर्थजी ने दिखाया था ।



समर्थ गुरु एवं समर्थ सिष्य

फोड़े के स्थान पर दोड़क के नीचे एक रस मरा



फस रखा गया था।

कल्याण स्वामी समर्थ शिष्य की उपाधि के अधिकारी बने। वे प्रागे चलकर समर्थ शिष्य यानी शक्ति-संपन्न शिष्य सिद्ध हुए। अन्य शिष्यों ने भी बहुत कुछ पाया। वे इस तथ्य को जान सके कि व्यक्तिगत प्राप्ति की अपेक्षा स्वयं श्रीर स्वराष्ट्र के प्राप्ति की महत्ता अधिक है।

### स्पृश्य-प्रस्पृश्य मीमांसा

कर्नाटक की उड़पी रियासत में मध्वाचार्य नामी एक सबसंग परित्यागी साधु रहते थे। समर्थजी के प्रताप की वार्ताएँ वे सुन चुके थे। वे उनसे मिलना चाहते थे। परन्तु परस भेने पर मिलना ठीक है, इस भावना से उन्होंने अपने सत् शिष्य को समर्थजी के पास भेजा। जब शिष्य महाराज समर्थजी से मिले तब समर्थजी को महान आनन्द हुआ। मध्वाचार्यजी के पत्र को ही मध्वाचार्य समझकर समर्थजी ने उसका हादिक वदन किया। सत् शिष्य का यथोचित स्वागत कर उसे आग्रहपूर्वक आतिथ्य के हेतु रोक भी लिया। जब समर्थजी ने अक्काबाई से मीठा खाना पकाने के लिए कहा तब सत् शिष्य बोले, "हम तप्त मुत्रांकित ब्राह्मण हैं। छुआछूत के कड़े नियमों का पालन हमारे धर्म में एक विशय स्थान रखता है। अतः किसी भी छूत वस्तु का खानपान हमारे लिए निषिद्ध माना जाता है। पत्नी रसोई भी हमारे लिए न खल सकेगी।"

सत् शिष्य का यह निवेदन सुनकर समर्थजी ने दिवाकर गुसाईं द्वारा रसोई की सामग्री उन्हें दिलवाई। सत् शिष्य नहा

घोकर ब्रह्मकर्म से निवट चुकने पर रसोई में सग गये। जब खाना बन चुका तो जल लान के लिए बे भावडी की ओर बल दिये। सौटन पर उन्होंने देखा कि रसोईघर में घुसकर एक कुत्ता बड़े ठाठ के साथ रोटियाँ उड़ा रहा है। यह देखकर सत् शिष्य शोधित हुए और उन्होंने कुत्ते को मार भगाया। परन्तु मूख से परेधान होने के कारण पुन रसोई बनाना उनके लिए अप्रत्यक्ष था। इस-लिए किसी ने देख तो नहीं लिया है—यह परतकर उन्होंने मन्त्रा भिषिक्त जल से और तुलसीदल से अन्न का पवित्र बनाकर भोजन के लिए घाली परोस ली। सबके साथ भोजन पान के हेतु उन्हें समर्पणी न खान वालों की पक्ति में विराजित किया। इस बात का ध्यान अवश्य रखा कि छूत से बह बच जाए।

मध्वाचार्य के सत् शिष्य का सहवास प्राप्त होने के कारण समर्पणी बड़े प्रसन्न हुए थे। स्वयं वे ही पंक्तियों को घी परोसते थे। गडबडी में वे यह मूल गए कि सत् शिष्य अमुक स्थान पर बैठे हैं और छूत को वे अप्रथम मानते हैं। और फिर 'घी' अपवित्र था नहीं। तो समर्पणी सब को परोसते समय उन्हें भी परोस गए। बस ही घी परोसा गया जैसे सत् शिष्य पिड़ गए और समर्पणी को गालियाँ देने लगे। जब गालियों की बीछार शुरू हुई तब समर्पणी ने घी का बरतन नीचे पटक दिया और ओर-ओर से रोने लगे। उनका रोना-धोना सुनकर समर्थ शिष्य घटनास्थल पर पहुँचे और उन्हें अपमान से आहत समस्त संतोष दिलाने का प्रयास करने लग।

समर्पणी बोले 'भाइयो, इनके विरुद्ध मेरी कोई शिकायत नहीं है। मुझे शिकायत है प्रभु रामचन्द्रजी के बारे में। मैं सोचता हूँ कि कृत्तों में भी गया-बीता यह जीवन उसने मुझे क्यों दिया, किसी

अपवित्र वस्तु को तुलसीदास स हम पवित्र बना सकते हैं परन्तु मेरे द्वारा परोसा गया पी क्या किसी हासल में पवित्र नहीं हो सकता ?'



समर्थजी के कथन का उद्देश्य यह सिद्ध ताइ गया और वह समर्थजी से क्षमा-याचना करने लगा। तब समर्थजी ने बतलाया, "हम जो कुछ खाते हैं वह पेट भरने के लिए प्रथवा स्वादयुक्त है इसलिए नहीं अपितु यज्ञकर्म के रूप में खाते हैं। शरीर श्री मिया यथोचित हो इसलिए खाते हैं। उत्तम भूत-प्राण की भावना नहीं होनी चाहिए। शरीर-धर्म को सदयकर ही उससे सत्कर्म कराने के

उद्देश्य से हमें खानपान का ध्यान रखना चाहिए। इससे बढ़कर खानपान को अधिक महत्त्व न देना चाहिए। सत् प्रवृत्तियों को पगाने वाला—शरीर धम की रक्षा करने वाला खाना ही बस। फिर चाहे वह किसी क द्वारा क्यों न पकाया गया हो।

जब मध्वाशाय ने सत्गिष्य क सीटन पर यह घटना खानी तब उन्हें बिदवास हुआ कि समथ रामदासजी सधमुष हनुमानजी के भक्त हैं और मन्त्रे माधु हैं। सयोग पाकर उन्होंने ममधजी स साक्षात्कार कर अपने को धय किया।

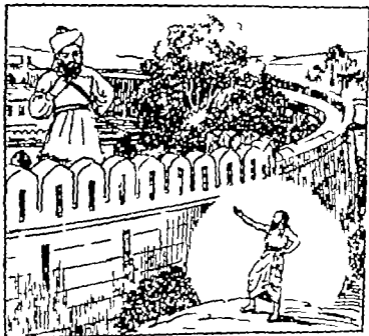


एक बार एक कत्रिम सत्गिष्य क यही मासाहार पा समयजा ने यह स्पष्ट किया कि सत् प्रवृत्तियाँ जाग खाने पर मनुष्य निबध मुक्त बन जाता है। इस घटना से मध्वाशाय विशेष प्रभावित हुए। फिर भी समथजी ने उन्हें बताया कि सत् प्रवृत्तियों को जागृत अवस्था का जानना सबसाधारण जनता के लिए धनक्य होता है, इसलिए बधनों का पालन होना चाहिए। मात्र दुद्ध धस करण परस्र बुकने पर किसी प्रकार का परहस्र रखना सबधा हानिकारक होता है।

### भगवान के वर्णन

एक बार साफ्ट को सीटते समय रंगनाथ स्वामी के साथ समथजी टाकट्टी गाँव में रहे। नियमानुसार रंगनाथ स्वामी का कीर्तन वही हुआ। टाकट्टी गाँव क मुसलमान भी रंगनाथ स्वामी के गिष्य थे। कौतन में रंगनाथ स्वामी न कहा, "संतों के सहवास से भगवान क दमन हाते हैं।"

टाकली गाँव में एक मुस्लिम धर्माभिमानी पठान रहता था। उसने रंगनाथ स्वामी के कीर्तन का समाचार जब सुना तब उन्हें बुलाकर कहा कि महाराज, अपने भगवान का वशन धगर भाप करा सकें तो मैं आपका कहना मान सकता हूँ वरना आपको गौ का गोस्त खाना पड़ेगा। पठान का यह भाषण सुन रंगनाथ स्वामी कुछ भबराए। उन्हीने समयजी को बुलाकर इस सकट का परिचय करा दिया। समर्थजी उनका कहना सुन तुरत किसे के बाहर बल



दिए। समर्थजी को बाहर जाते देख रंगनाथ स्वामी उस पठान से कहने लगे 'देखिए साहब उस साधु के द्वारा आप भगवान का

दयान पा सकते हैं।" पठान किम दर बड़ ग्ना प्रीर समयजी का पुकारन सगा। समयजी न कहा प्राप नावान का दान चाहत हैं न? प्राइए सीध माग स मर पीछ-पीछे हो लीबिए। परन्तु याद रसिए कि माग की सीध कहीं बिगड न जाए।

समयजी का यह भाषण सुन पठान ने यह अनुभव किया कि किम के ऊपर सीधे माग पर मैं क्योंकर चर सकता हूँ? किले को स्वीचना घटक्य है। तब उसने पूछा, "महाराज, यह कैसे मुमकिन है?" समयजी बोले, "सत्याचरण का मार्ग ही भगवान की ओर जाता है। सत्याचरण वाला अपने जीवन को कभी दीन हीन या दुःखी नहीं पा सकता। निभय होकर जीवन से घिरकत वमन क बाद ही यह घबस्वा प्राप पा सकेंगे। अर्थात् इस अयस्था को पाना हो तो किले की दीवारों का भय त्याग कर उन्हें स्वीचने की अदूट समता प्राप्त करो जिससे अनायास भगवान के दयान प्राप पा सकेंगे। यानी आत्मरूप बन सकेंगे।"

समयजी का यथाप कहना सुनकर वह पठान समयजी का अनुग्रहित शिष्य हो गया।

### मनोती और सपना

कोंकण प्रांत में समयजी दीरे पर थे। एक छोटे से गाँव में पहुँचकर उन्होंने देखा कि धर्म प्रचार के लिए यह स्थान बहुत उपचित है। क्योंकि इस गाँव के आबूबाजू में पयतीय प्रवेस का प्रीर उस प्रवेस में अनेक छोटी-छोटी आबादियाँ थीं। जिस गाँव में वे रुके थे वह छोटा क्यों न हो परन्तु पर्वतीय खोभा से सुसंगत था। दिन भर वहाँ रहने पर समयजी ने यह आना कि यहाँ के

रोग भी बड़ थढ़ालु और भावुक हैं। कीर्तन में बड़े परिमाण में वे उपस्थित हुए हैं। परन्तु तीन चार दिन के पश्चात् उन्होंने देखा कि कीर्तन में एक भी भादमी सम्मिलित नहीं हुआ। फिर भी समर्थजी अपने शिष्यों के साथ कीर्तन में रग जाते और धर्म प्रचार का कार्य आजूबाजू में करते।

कुछ दिनों बाद समर्थजी को इस बात का पता चला कि उस गाँव में एक हिन्दू पटेल रहता है और उसने वहाँ के निवासियों को कीर्तन में सम्मिलित होने के लिए मना किया है। यहाँ तक कि अपनी धौंस से उसने उनसे यह भी कबूल करवा लिया है कि जो कीर्तन में सम्मिलित होगा उसे यह गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा या पटेल के द्वारा निर्धारित दण्ड देना पड़ेगा। यद्यपि गाँव के सभी लोग समर्थजी को चाहते थे परन्तु लाचार होकर उनके कीर्तन से उन्हें वंचित रहना पड़ता था। फिर भी समर्थजी धर्म प्रचार का अपना नियमित कार्य उस गाँव में रहकर करने लगे।

एक दिन सुबह-सुबह समर्थजी ने मुरगे के चिल्लाने की आवाज सुनी। जब समर्थजी उस मुरगे के पास पहुँचे और उन्होंने देखा कि मुरगे को काटने के लिए ले जाया जा रहा है तब उन्होंने उस भादमी को रोका जो ले जा रहा था। सहसा उस भादमी के पीछे उस गाँव का पटेल आ निकला और समर्थजी से कहने लगा "क्यों महाराज, धर्म कार्य में बाधा डालते हो? मेरे एक सुपुत्र है। वह बीमार हुआ था। मैंने काली माता से मनोटी मानी कि अगर मेरा वास्तव बीमारी से मुक्त हुआ तो मैं मुरगे का नबेघ चढ़ाऊँगा। काली माता की कृपा से बालक रोगी हो गया। लेकिन तीन महीने तक मुरगे का नबेघ मैं चढ़ा न पाया। कल रात को मैंने सपना देखा। काली

माता ने मुझसे कहा कि मैंने अपना काम किया है अब तुम अपने वधम का पालन करो। मैं भूल गया था। इसीलिए आज मुरगे का खरीदकर मैं जा रहा हूँ। अब इसे पाटकर घमविधि के धनु-मार इसका नैवेद्य बढ़ाऊँगा।

पटेल का यह भाषण सुनकर समयजी ने पटेल और उसने घासी की गरदनों को पकड़ जोरों से खींचा और कहा, "मैंने भी कल रात एक सपना देखा है। ग्रामदेवता ने मुझसे कहा कि



मैंने भी एक सपना देखा है  
 दो मूस्टण्ड घासियों की बलि मेरे चरणों में चढ़ाओ। वठा घण्टा



हुषा । सुयह-सुबह सुम मिल गए । वरना मुझे मुस्टण्डे घादमियों को डूँढ़ना पड़ता । खलो घामदेबता के घावेघानुसार धम-विधि युक्त तुम्हारी वस्ति उन्हें धड़ाऊँ ।”

यह कहकर समर्थजी उन्हें पकड़ नोरों से घसीटने लगे । समर्थजी शक्ति-सपन्न थे । उनकी पकड़ को पटेल खरा भी डील न दे सका । साधार होकर वह उनकी छरण में घाया और प्राणदान की मिखा माँगने लगा । पटेल को असहाय बना समर्थजी बोले—

“भाई, भगवान कदापि यह नहीं चाहते हैं कि उनके कारण किसी के प्राणों की बलि चढ़ाई जाए । और मनोसी मानमा अपने देखना यह सब कुछ भावनाओं की लीलाएँ हैं । जिस प्रकार हमें अपने प्राण प्रिय होते हैं उसी प्रकार पशु-पक्षियों को और जानवरों को भी अपने-अपने प्राण प्रिय होते हैं । भगवान सर्वभ्यापी और सर्वसाक्षी हैं । हमने ही अपनी-अपनी निजी वृत्ति के अनुसार धम का विधान निर्धारित किया है । हमारा यह विधान सर्वथा स्वार्थी है और असत्य की नींव पर खड़ा है । सो सभी प्राणियों को भगवान समस्त उनकी धर्मना करनी चाहिए ।”

समर्थजी का उपदेश सुन पटेल का धम दूर हुआ और वह समर्थजी का भक्त बना । जिसके कारण वह गाँव धर्म प्रचार का प्रमुख केन्द्र बन सका । धर्म प्रचार के निमित्त समर्थजी ने जो बल प्रयोग किया वह धर्मप्राण है—ऐसा साध समझने लगे । क्योंकि पटेल की दुष्टता से सारा गाँव उन्नत गया था । समर्थजी के दण्ड देने पर ही वह सन्मार्ग पर आ सका जिससे उस गाँव के लोग धम प्रवचता की अपनी स्वाभाविक इच्छा को पूर्ण कर सकें ।

## कल्याण ने सामर्थ्य कैसे पाई

पाराजी पत नामी एक ब्राह्मण कोन्हापुर में रहते थे। उनके आश्रम में एक धनाय परिवार रहता था। पाराजी पत उस परिवार का भरण-पोषण बत्सलता से करते थे। उस परिवार में धबाजी नाम का एक बालक था। वह बड़ा सुझ और आशाकारी था। समर्थजी ने उसका गुणों को ताड़कर उस धन-काम के लिए मांग लिया। यथाविधि दीक्षा देकर समर्थजी ने उस धनता सिष्य बनाया। धबाजी भी आशा के अनुसार धर्म-काम में लग सक्रिय पाता रहा।

एक बार बाफ़्ल में दास मन्त्री के अवसर पर प्रभु रामचन्द्रजी के रथ का जुलूस निकला। रास्ते के बीच एक पेड़ था जिसकी एक शाखा रास्ता रोके लड़ी थी। शाखा के कारण रथ को उस रास्ते से से जाना अशक्य था। इसलिए समर्थजी ने उसको काटने का आदेश दिया। धनेकों सिष्य शाखा काटने के लिए आगे बढ़े। पर समर्थजी ने कहा कि शाखा को नीचे की ओर से काटना होगा। नीचे की ओर से काटने पर आखा के साथ बावड़ी में गिरने की सम्भावना थी। धन कोई सिष्य धनने प्राण संकट में डालने के लिए तयार न हुआ। केवल धबाजी आगे बढ़ा और आशा के अनुसार उसने शाखा काटी। कुल्हाड़ी के अंतिम आघात के साथ-साथ धबाजी और वह शाखा, नीचे बावड़ी में गिर पड़े। लोगों को विश्वास हुआ कि धबाजी धन वच नहीं सकता। लोग समर्थजी को कोसने लगे।

सहसा समर्थजी ने बावड़ी के अंदर झाँका और धबाजी का पुकार कर कहा, "माई, वहाँ क्या कर रहे हो? बस्ती से उमर

माधो । जुजूस रुका जाड़ा है।" समर्थजी का आदेश सुनकर अंबाजी बाहर आया, तब कहीं लोगों को जान में जान आई । समर्थजी ने उसी क्षण से उसे कल्याण कहना शुरू किया ।



इस प्रकार अंबाजी अर्थात् कल्याण ने अनेक बार परीक्षाओं में सफलता पाई । तब कहीं से समर्थ शिष्य इस पद को प्राप्त कर सके ।

एक बार थाफ़्ट के रामनवमी उत्सव में हाथी पर प्रभु राम चन्द्रजी की पादुकाओं का जुजूस निकाला गया । बाजे-गाजे का शोर

मुन भक्त हाथी बीसला उठा । बहु जुमुस म मनमाना दोहन लगा ।  
 भोग धबड़ाए । भक्त हाथी की उद्दामता को देख समर्थजी ने उसको  
 पकड़ने की धाजा दी । धाजा पाते ही कल्याण स्वामी ने धाब दखा  
 म ताव एक हाथ से हाथी का दाँत पकड़ वे उसकी गरदन घीर



सूँह पर प्रहार करने लगे । सहमे के धन्दर-धन्दर हाथी की सारी  
 उद्दामता धायव हो गई और जुमुस यथास्थान यथासमय पहुँच  
 गया ।

कल्याण की सामर्थ्य देखकर समर्थजी ने कल्याण को 'समर्थ  
 गिन्य' इस पद से विभूषित किया । कल्याण स्वामी धर्मित-२

धर्म-सपत्न, मुक्ति-सपत्न तक-सपत्न श्रीर भाशाकारी सिष्य थे । समर्थ-संप्रदाय के वे प्रमुख बालक श्रीर समय-शिष्यो के प्रमुख अनुयायी । आज भी समर्थ-शिष्य कल्याण स्वामी का मठ डोम गाँव तासुका धार्गी जिला सोलापुर में मौजूद है । कल्याण स्वामी, समर्थजी श्रीर प्रभु रामचन्द्रजी के उत्सव वही घूमघाम से बहूँ आज भी मनाए जाते हैं ।

**गुरु-सेवा ही भगवान की सेवा है**

समर्थ-शिष्य कल्याण स्वामी की यह प्रामाणिक धारणा थी कि गुरु-सेवा ही भगवान की सेवा है । इसी धारणा के अनुसार वे



काया, वाचा और मन से समर्थजी की सेवा करते थे। एक बार जब समर्थजी सज्जनगढ़ में बीमार हुए तब दिवाजी के राजवैद्य ने यह सलाह दी कि मढ़ की बावड़ी के बजाए नीचे साई में जो बावड़ी है उसका पानी पिया कीजिए। वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभकारी है। उस बावड़ी का प्रतिदिन पानी ले घाना कोई हँसी-मजाक की बात नहीं थी। क्योंकि उन दिनों पगडड़ी भी उस स्थान के लिए बन न पाई थी। दो मील साई में उतरना और दीवार जैसी छड़ी पहाड़ी पर चढ़ना असम्भव था। फिर भी समय सिध्द कल्याण स्वामी क्रमशः बारह महीने पानी खाते रहे। एक बार पानी खाते समय दिवाजी राजा ने जब उन्हें देखा तब वे आश्चर्य भक्ति हुए। तब उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि स्वराज्य की नींव इन्हीं धर्माभिमानियों के बल पर रखी गई है और सैनिकों के द्वारा उसकी रक्षा की जाती है।

### शक्ति और उसका सदुपयोग

समर्थजी के सहवास में सज्जनगढ़ में रहते समय दिवाजी राजा के एक भक्त ने दिवाजी को एक तगड़ा बौड़ा भैंस में समर्पित किया। सजे हुए घोड़े को सौंपते समय वह भक्त बोला, 'महारुद्र इस पर अभी तक किसी ने सवारी नहीं की है शत्रु साईस के द्वारा पहले इसे अभ्यस्त बनाया जाए और उसके बाद प्राप स्वयं इसका उपयोग करें।

जब समर्थजी ने उस घोड़े को देखा तब वे कहने लगे "बाह ! घोड़ा बड़ा ही तेज और तगड़ा दिखाई देता है। परन्तु इसे जगह जगह पर चलाया क्यों गया है ?" यह कहकर समर्थजी

साज उतार कर फेंक दिया और उसके वालों को पकड़ के उस पर सवार हुए ।



समर्थजी जैसे ही घोड़ पर सवार हुए वह बायुवेग से दौड़न लगा । न बड़ी-बड़ी शिलामों को वह परबाह करता था न पहाड़ियों को घीर न चट्टानों की । जब शिवाजी और अन्य शिष्यों ने घोड़ की तेज रफ्तार को देखा तब उन्हें मय हुआ कि हो न हा भोड़ा धव समर्थजी को अवश्य ही पटक देगा । समर्थजी अगर माबधानी न करते तो शायद गिर ।

समर्थजी के पीछे धनेक घुड़सवार दौड़ाए गए परन्तु वे सबक

सब दीड में पराजित होकर लौट आए। कुछ घंटों में बका-भावा वह थोड़ा समझती लीटा आए। साइस भी जिस थोड़े पर सवाद होने में भय खाता था उस थोड़े की समझती ने बात की बात में अपने बल में कर लिया।

इस घटना से शिवाजी ताड़ गए कि राज्य-साधना में जो सैनिक अथवा कौशल दिलाते हैं वे समझती के कारण ही सधे हुए हैं। वहां तक कि जो गुप्त काम सफल बनते हैं वे ऐसे ही गुप्त और शक्ति-संपन्न अथवा अमलकारों के द्वारा सफल बनते होंगे।

### गुप्त सेवक समझती

मंसूर के वन प्रदेश में रहते समय समझती सगम में नहते थे और पहाड़ी गाँव में कोरान्त भिक्षा माँगते थे। उस गाँव में पट्ट-बारी (कुलकर्णी) का एक परिवार रहता था। जब समझती उसके आँगन में 'अय अय रघुवीर समझ' कह कर प्रथम बार पहुँचे तब उस घर की लक्ष्मी से उन्हें खताड़ खानो पड़ी। तब समझती ने यह खाना कि यह परिवार कुछ दुःखी है। उस दुःख को खाने के हेतु भिक्षा न पाने पर भी समझती नियमानुसार जाते रहे। जब गृहलक्ष्मी ने यह दखा कि यह साधु कुछ निराला है तब उसने आत्मभाव से अपने दुःख की कथा उन्हें सुनाई। उसने कहा, "अधम पर वर्षासन बसूस करके न देने के कारण मेरे पति को कैद कर बीजापुर के दरबार में ले गए हैं। अब उनका छूटना असम्भव है।

समझती ने तुरंत आवाज दिया कि समझ लो ग्यारह दिनों के अंदर-अंदर वे घर पर मिलेंगे।



एक गुसाईं के आशवासन पर वह माता स्वस्थ कैसे बन सकती थी। परन्तु एक गुसाईं नियमानुसार रोज़ प्रांगण में आवाज लगा जाता था।

बचन के अनुसार भेष बदलकर समथजी सायइसोड कन्हाड़ गाँव की घर्पासन की रकम से बीजापुर के दरवार में पहुँचे और



अपने को पटवारी का कारिदा कह कर वासोपंत नाम बताया तथा रकम भेदा करके पटवारी को छुड़ा लिया। यहाँ तक कि पटवारी को कन्हाड़ गाँव तक पहुँचा कर कबल यही संवेद्य दिया कि माता जी के द्वारा किसी गुसाईं का घनादर न होने पाए। जब वह पट

वारी ठीक ग्यारहवें दिन घर पहुँचा सब उसने बमपत्नी से पूछ-  
ताछ की। परन्तु उसने केवल इतना ही बसलाया कि एक गुसाईं के  
भाष्यासन देने पर कवाचित् आपको मुक्ति मिली होगी। मुझे मुक्त  
कराने वाला 'वामार्पत' ही गुसाईं हो सकता है यह कल्पना कर  
वह पटवारी उन्हें ढूँढने लगा। पर समर्थजी कब के चल दिए थे।

मुस्लिम शासन से सकारण या अकारण पीड़ित अनेक परि-  
वारों को सहायता पहुँचाने के कारण वे सारे के सारे परिवार  
समर्थ-संप्रदाय के कट्टर अनुयायी बने और धर्म-साधना में उन्होंने  
मरसक हाथ बँटाया।

अपने पति को सकुशल लीटते हुए देव गृहमाता को महान्  
आनन्द हुआ। अब उसने यह निश्चय किया कि उस गुसाईं का  
पर्यन्त किए बिना मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। समर्थजी से साक्षात्कार  
कर अपने जीवन को सपन्न बनाने के हेतु कई दिन भूखी  
प्यासी वह वन प्रदेशों में घूमती रही। जब एक गुहा में समर्थजी  
के दर्शन पा वह कृतार्थ बनी तभी उसे सतीप हुआ। यही गृह-  
माता भविष्य में समर्थ-शिष्या सिद्ध हुई और राज्य-साधना के  
दुर्भर काम को निभा सकी।

### संगीत-सभा में गर्व-परिहार

कर्नाटक प्रांत का एक संगीत विचारक सिवाबी राजा के दर-  
वार में इसलिए उपस्थित हुआ कि सब संगीत-विचारकों को परा-  
जित कर विजय-मग्न प्राप्त करे। वह गवमा शास्त्रीय संगीत में  
निपुण था और उसने अनेक प्रांतों के गवैयों को पराजित  
था। जब वह सिवाबी के दरबार में पहुँचा तब स्वयं

उनके दरवारी काम में व्यस्त थे । इसलिए शिवाजी राजा ने उस गवैये से यह कहा कि आप सज्जनगढ़ में समर्थजी के पास आइए । उन्होंने अगर आपकी कला को श्रेष्ठ स्वीकार किया तो विजय पत्र आपको दिया जाएगा ।

राजा की इस आज्ञा को सुन वह गवैया बहुत खुश हुआ । वह विस्वास करने लगा कि बात-बात में साधुजनों पर मैं विजय पाऊँगा । क्योंकि साधु-मण्डली शास्त्रीय समीत को किस प्रकार जाम सकती है ?

जब वह सज्जनगढ़ पहुँचा तब समर्थजी ने उसकी यथोचित भावमयत की । दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त हो चुकने पर समर्थजी ने सब शिष्यों को समा-मण्डप में उपस्थित होने का आदेश दिया । रात को दस बजे संगीत-सभा प्रारम्भ हुई । समर्थजी ने कर्नाटक के शास्त्री से यह प्रार्थना की कि वे अपना संगीत शुरू करें । शास्त्री भुष्मा ने फरमाया, 'हम शास्त्रीय संगीत के विशेषज्ञ हैं । साम्प्रदायिक नियम के अनुसार समीत-सभा को कोई दूसरा गवैया प्रारम्भ करे ।'

यद्यपि समर्थजी ने यह समझाया कि हमारे यहाँ कोई साम्प्रदायिक संगीत नहीं जानता है सो आप ही प्रारम्भ करें पर गवैये ने नहीं माना । अनुमति बिनय करके भी समर्थजी हार गए । इसी बीच शिवाजी राजा भी सभा में उपस्थित हुए । घत में लाचार होकर समर्थजी ने समर्थ शिष्य कल्याण स्वामी को अपना संगीत सुनाने की आज्ञा दी । कल्याण स्वामी ने तंबूरा समाला धीरे पढ़ते ही मजन गाया । पढ़ते ही प्रत्येक ठाम जब अपनी लहर से शिष्यों एवं भावों के मोतियों को बिखेरती तब सारी संगीत-सभा मंत्र मुग्ध बन जाती । कल्याण स्वामी के बाद समर्थजी ने वेष्टवाई म

गाने के लिए कहा। वेणुबाई ने पंचकन्याण भोगी कालिंगड़ा आदि रागों में ३४ भजन गाए।



कर्नाटकी गवये ने अनुभव किया कि ताल प्रीर स्वर के मेल से जो भाव स्पष्ट हो रहे हैं वे दृढ़ रूप बनकर धपती धपूर्वता के कारण दर्शकों के हृदय से घनायास बह उठते हैं। हादिक भावों को मूर्त करने में इस संगीत की बराबरी शास्त्रीय संगीत नहीं कर सकता। वेणुबाई का भजन समाप्त होने के बाद समथजी ने शास्त्री बुधा से धपता शास्त्रीय संगीत मुनाम के लिए प्रार्थना की। पर शास्त्री बुधा के कान धमी तक उन्हीं भजनों के चित्रों में तीन धपने-आप को भूल गए थे। अब वे तंद्रा से जाये तब समथजी के चरणों में लिपट धपती पराजय का मुक्तकठ मे भ्वीकार करने लगे। कर्नाटक के शास्त्रीय गवये द्वारा इस प्रकार धपती

पराजय मान लेने के बाद समर्पजी बोले—

“इसमें कोई शक नहीं है कि प्रायः शास्त्रीय संगीत के विशेष-पक्ष हैं। परन्तु यदि रक्षित संगीत कला को कला के पद से घसीट कर शास्त्रीय सिंहासन पर धास्त करने के कारण उसकी कलात्मकता जाती रही है। शास्त्र और कला में महान अंतर है। शास्त्र में नियमों का प्राधिपत्य होता है और कला स्वयमेव तथा सबमगलदायिनी होती है। शास्त्र की अपेक्षा कला को भारतीय सभ्यता श्रेष्ठ मानती है। कला अपने-प्राय में लीन होकर दूसरे में भी लीन होने की क्षमता रखती है। शास्त्र में ये माय नहीं होते। कला से अद्वैत भाव जागते हैं और शास्त्र से इतना भाव का निर्माण होता है। अतः शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा कलात्मक ज्ञान श्रेष्ठ है। इसलिए प्रायः भी कलात्मक संगीत की उपासना कीजिए। जिससे अपने जीवन के साथ-साथ दूसरों के जीवन को भी संगीतमय बनाकर जीवन के अनूठे धानन्द को प्रायः या मकाने और जीवन को रूचिकर बना सकेंगे।”

संगीतशास्त्र-विषयक समर्पजी की इस भूमिका को सुन कर्नाटकी गवैये का अभिमान जाता रहा। वह समर्पजी का परम भक्त बन गया। इस संगीत समा से दिवाजी राजा भी विशेष प्रभावित हुए।

### जीवन संगीत का अनूठा दृश्य

गुणस दिवाजी राजा की कीर्ति सुन कृमकोणम् का एक गवैया अपनी सेवाएं समर्पित कर गौरव पाने के उद्देश्य से दिवाजी राजा के पास एक बार पहुँचा। दिवाजी बड़े धानन्द के साथ उससे

मिस धीरे उसकी इच्छा के अनुसार उन्हें गिने धुन दरवारी धीरे समय सिध्यों की एक सगीत-समा आयोजित की। गवैया बड़ा निपुण था। अपने सगीत के साथ दर्शकों के जीवन में भी वह सगीत भरता था। उसकी हर तान धीरे हर स्वर पर खोना-मण्डली बाह-बाह की ध्वनि से समा-मण्डप नितादिन करती थी। बाह बाह 'बहुत श्रुत की ध्वनियाँ इतनी बढ़ने लगीं कि सगीत का अनुठापन कुछ विफल-सा होने लगा। सगीत-समा की इस घबन्धा को देख समर्थजी चिढ़ गए। जब एक गीत समाप्त हुआ तो समर्थजी ने श्रोतृवृन्द का वह आदेश दिया कि जो कोई गायन के बीच बाह-बाह या बहुत मन्त्रा के शब्दों को उच्चारित करेगा उसे कड़ा दण्ड दिया जाएगा।

इस आदेश को सुन गायक धीरे श्रोताओं में विभाजक रत्ता खिच गई। श्रोतागण मन-ही-मन घबरा अपनी धूलों गरदनो या हाथों के झगारों में अपने मानसिक ध्यान का व्यक्त करन लगे। गवैया समा हुआ था। वह अपने-आप में हीन संगीत के ध्यान से विभोर हो उठा था।

सामने ही एक शास्त्री बैठे थे। वे भी सगीतज्ञ थे। एक बार तिताले के गीत ने जब सम पर अपने पद को म्भिर कर भागे की धीरे बढ़ना पाहा तब वे शास्त्री बुधा बनायास 'बाह-बाह' कह उठ बढ़े हुए। उनकी उस हरकत से समा में सन्नाटा छा गया। रक्षकों ने शास्त्री बुधा को पकड़ आदेशानुसार समर्थजी के सम्मुख उपस्थित किया।

जब शास्त्री बुधा पर अभियोग आरोपित हुआ तब वे बोले, 'यह सत्य है कि मैंने आज्ञा का भंग किया है। परन्तु मैं लाचार

हैं। सगीतमय उस 'सम' की लय और एकरूपता से मैं अपने ध्याप को रोकने पर भी असमर्थ हो गया। 'सम' प्रात्मानन्द को मैं पा चुका हूँ। सगीत के धनूठे रंग में रंग अपने ध्याप को क्षो युक्त हूँ। अब ध्याप मुझे चाहे जो दण्ड दे सकते हैं।

शास्त्री युष्मा का यह भाषण सुन स्वयं समर्थजी और शिवाजी बड़ प्रसन्न हुए। सगीत के धनूठपन का प्रभाव दर्शकों को विस्तार उम्होंने गजब के साथ-साथ शास्त्री युष्मा का भी यथोचित सत्कार किया।

अनंतर जो सगीत-सभा हुई वह धनूठिण तो थी ही, अतर्क्य भी हो गई।

### शिवाजी राजा की परीक्षा

समर्थजी सब को परख लेते थे। छोटा-बड़ा, ब्राह्मण-शूद्र दौलतमद-गरीब या हिन्दू-मुसलमान—यह भेदाभेद ब नहीं मानते थे। धायु धीर ज्ञान के परिभाष को पश्य कर ही परीक्षा होती थी। कार्यक्षमता में किसी प्रकार का अंतर न हो इसीलिए समर्थजी के सहवास में रहम वाले को अनेक बार समय-असमय पर परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना पड़ता था जिससे समर्थजी अपने अनेक विधि कार्य सुचारु रूप से चला सकते थे।

जीवन मृत्यु के चक्र से मुक्त हुए बिना शिवाजी राजा प्रजा-हित-रक्ष नहीं हो सकते—इस भूमिका के आधार पर समर्थजी ने एक बार बीमारी का बहाना किया। शिवाजी राजा ने राजवेष्टक द्वारा अनक उपाय करवाए फिर भी समर्थजी की कराह दूर न हो सकी। समर्थजी का बेचन बेल शिवाजी राजा दुःखी हुए।

न्होंने पूछा, “गुरुदेव, आपकी बीमारी बहुत बढ़ गई है। क्या सफा कोई भी इलाज नहीं है?”

समर्थजी बोले, ‘है क्यों नहीं? सिर्फिन वह प्राणमेवा है। सीलिए मैं किसी से नहीं कहता।’

शिवाजी बोले “चाहे कितना भी भीषण क्यों न हो मुझे बत-  
गाए। मैं भवश्य वह उपचार करूंगा।

समर्थजी बोले, “मेरे पेट का दर्द केवल धेरनी के दूध से दूर हो सकता है।



रात्रि का समय होने पर भी समर्थ के आदेश को पा शिवाजी धेरनी का दूध साने के लिए पहाड़ी गुहाओं की धोर खाना हुए



जैसे ही एक गुहा के द्वार पर वे पहुँचे वैसे ही अपने सावकों के साथ विश्राम सेने वाली खेरनी उन पर झपट पड़ी। खेरनी की झपट से शिवाजी जमीन पर गिर पड़े। शिवाजी को विश्वास था कि समथजी की कृपा से मृत्यु मेग बाल भी बँका नहीं कर सकती। वे केवल 'श्री राम जय राम जय जय राम' का जप करने लगे।

कदाचित्त शरनी यह समझ गई होगी कि शिवाजी राजा मर चुके हैं या उसके लिए यह वध अनावश्यक है इसलिए शिवाजी वध गए। जब वह शरनी अपनी गुहा में लौटी तब शिवाजी ने गुहा में प्रवेश किया और उसे पुचकार कर वे दूध दुहने लगे। शरनी भी गी की भाँति चुपचाप सड़ी रही। जैसे ही शिवाजी ने दूध पामा वैसे ही बापुबेग से वे इसलिए लौटे कि अस्त से अस्त उपचार कर गुरुदेव को धाराम पहुँचालें।

शिवाजी का यह साहस देखकर समथजी को विश्वास हुआ कि धर्म से जीने वाले और ज्ञान से मरने वाले शिवाजी हैं। इनसे अवश्य ही जनता का कल्याण होगा।

### बहुरस्ता असुभरा

बाराणसी में सदाशिव शास्त्री वेबसेकर नामी एक दक्षप्रणी ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने सारे उत्तरी भारत के ब्राह्मण पंडितों को जीत लिया था। जब वे दक्षिण प्रांत की यात्रा के लिए निकल तब महाराष्ट्र में प्रवेश कर उन्होंने जाना कि मज्जनगढ़ में एक विद्वान और प्रभावी साधु रहते हैं। उन्हें शास्त्राध्य में पराजित कर विजय-मंत्र प्राप्त करना चाहिए। वह प्रथम शिवाजी राजा के पास पहुँचे और अपनी मठभ्य प्रकट कर अपने साथ शिवाजी

राजा को समथजी के पास ले आए ।

समथजी ने राजा के साथ विद्वान् ब्राह्मणों को देख भूमि भादन किया और यथास्थान बैठने की प्रार्थना की । परन्तु सदाशिव शास्त्री मद्यार जलाए खड़े ही रहे । समथजी का बरताव देख उन्हें क्रोध आया । जब समथजी को इस बात का पता चला कि ये दशग्रंथी ब्राह्मण हैं और शास्त्रार्थ करने के लिए पधारे हैं तब उन्होंने इन्हें सम्मानपूर्वक विठाना चाहा । परन्तु सदाशिव शास्त्री प्रपमान से क्रोधित हुए थे । उन्होंने कहा, 'शास्त्रार्थ में जब तक आपको पराजित न करूँगा तब तक मैं बैठ नहीं सकता ।'

समथजी बोले 'अमा कीजिए । मुझे मान्य न था कि आप काशी के निवासी हैं और दशग्रंथी ब्राह्मण हैं । आप यदि बिना वाद बिबाद के बैठना पसंद न करेंगे तो हममें से कोई भी आपसे विवाद करने के लिए तैयार होगा । अय-पराजय के हम प्यासे नहीं हैं । शास्त्र में नैपुण्य पाने की अपेक्षा हम धर्म-कर्म में सीम रहने को अधिक महत्त्व देते हैं ।'

यह कहकर समथजी ने एक बेंच को बुला लिया जो प्रतिदिन लकड़ियाँ बेकर सज्जनगढ़ की रोटियों पर परता था । समथजी की आज्ञा के अनुसार दृढ-भद्रत-ब्रह्मज्ञान आदि विषयों पर उसने शास्त्रार्थ किया । शास्त्रार्थ कर चुकने पर समथजी ने सदाशिव शास्त्रीजी से प्रार्थना की कि वे अब पूर्व पक्ष के अधिकारानुसार बेंच के मतों का खडन करें । पर एक बेंच के द्वारा पराजित शास्त्री पूर्ण पक्ष का विस्तार करने में असमर्थ रहे और एक घण्टे से पराजित होने के कारण अपनी जवान काटने पर उठारु हुए ।

समथजी ने उन्हें पकड़कर कहा कि माई, यह भूमि बहुरत्न

बमुधरा है यहाँ की प्रत्येक वस्तु अपनी अपनी योग्यता के अनुसार नर्व्यथ है। किसी वस्तु को अधिक महत्त्व देना और किसी



का कम यह उचित नहीं है। जब और पराजय की भूमि से उठकर धमक्षेत्र की धाधार भूमि पर चलना चाहिए इसी में जीवन की नापुरी है—मायकता है।

समर्थजी का उपदेश सुन सदाधिव शास्त्री उनके महान मक यने।

हमें इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि सहवा म मनुष्य सत्बधील और ज्ञानी बनता है। घेड होने पर

सज्जनगढ़ के समथ मठ में सम्प्रथ स्यापित शान के कारण वह पर शास्त्री हा गया था । कहते हैं कि बडा का कुत्ता भी उर होता है ।

### समथजी की शरण में भरोबा

हिन्दुओं की कमीन जाति में भगवा नामा देवता का बहुत बडा महत्त्व है । धनी के अनुमार प्रत्येक पय ने अपनी अपनी प्रवृत्तियों का लक्ष्यकर अलग-अलग देवता गढ़ हैं । क्योंकि पूजने की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में हिन्दुओं में पाई जाती है । फिर वह पूजन किमी का क्यों न हा ।

सज्जनगढ़ में जब राममंदिर बनवान की बात समथजी ने लय की तब उसके लिए दमदान के पाम का स्यान चुना गया जहाँ भरोबा का मंदिर था । समथजी प्रभु रामचन्द्रजी का सबखण्ड देवता मानते थे और उनके आराध पर ही चलते थे । उन्हें यह मालूम था कि भगोबा लम नैवद्य का अधिक पसंद करते हैं जो बकरियाँ भुग्न काटकर बनाया गया हो । कडाचित भक्तों ने ही इस नवद्य को सबखण्ड समक लिया होगा जो उनकी अपनी निजी प्रवृत्ति का भाता था ।

कुछ भी हो भगवा और उसके भक्तों के आचरण में समथजी किङ्ग गए प । जब राममंदिर का शिलान्यास हुआ तब भरोबा के अपने भक्तों ने समथजी से यह प्रायना की कि भगोबा देवता बड़ बड़े होते हैं । पर उनकी मर्यादा की जानकर मंदिर का अहाता छोड़ राममंदिर की स्थापना की जाए । भक्तों की यह प्रायना सुन समथजी ने तलवार उठाई और भरोबा का निरखण्ड करन के

लिए वहाँ पहुँच गए। भैरोबा ने कहने लगे 'तुम स्वयं हिंसाकारी हो और अपने यक्तों को भी हिंसाचारा बनाते हो। इस जगत में



तुम्हारा अस्तित्व बहुत अंतरनाक है। तुम्हें मरना ही होगा।'

यह कहकर समथजी ने उस मंदिर की मूर्ति काटकर उससे इट-पत्थरों को भी उठाकर फेंक दिया।

लोग आश्चर्यचकित हुए और समथजी की मामूय को देख मममस्तक भी हुए। लोगों ने यह अनुभव किया कि भैरोबा समथजी पर प्रमत्त हुए हैं और उन्होंने ही राममंदिर की स्थापना में योग दिया है। वे रामस्वरूप हो गए हैं।

कुछ भी हो पर वह स्थान राममंदिर के लिए बहुत उपयुक्त निश्चि हृष्टा । घाज भी राममंदिर वही मौजूद है और मम्मिलित हिन्दू परिवार वही पठुषकर वड़ी धूमधाम के साथ रामनवमी का उत्सव मनाते हैं ।

अब अब रघुवीर समय !

० ० ०



## भारतीय संस्कृति की देन

भारतीय संस्कृति स्मरणातीत काल से ऐसे मनीषियों को जन्म देती चली आ रही है जिनके बल पर आज भी वह संस्कृति अजर और अमर है और अपना सनातनत्व सिद्ध कर रही है। उनमें स जिन महाभागों ने धर्म, समाज और राष्ट्र के काय में विशेष योग बढ़ाकर हिन्दू समाज के अविभाज्य अंगों को बनाए रखा वे अवतारी पुरुष सिद्ध हुए और गेय सांस्कृतिक जीवन को गढ़ते रहे। चाहे वे महादूर हों या न हों पर यह सत्य है कि ऐनों के बल पर ही हमारा सांस्कृतिक जीवन गढ़ता मुड़ता और बढ़ता गया है। जीवन के इन तीनों धर्मों का समयानुकूल अर्थात् अरण्य पोषण जिस प्रकार समय रामदासजी ने किया है उसी प्रकार की अमता समर्थ शिष्य श्रीधर स्वामी ने आज हम पाते हैं। अज्ञान अहित, प्रेम, कर्मण्यता अस्पृहा और ज्ञान के क्षेत्र में हजारों समर्थ अर्थों ने इस बात का अनुभव किया है कि श्रीधर स्वामी ने वह अलक है जो समर्थजी में प्रखरित थी। श्रीधर स्वामी का जीवन अरिअ अपना अलौकिकता को अिये अ्यक्तिगत अंपर्क से समूचे हिन्दू समाज में अय अ्याप्त होने आ रहा है। हमारा यह परम सीमाय है कि समय के रूप में आज वे हमारे अीध रहकर हमारे जीवन को गतिविधि दे रहे हैं।



संबंधाधारण समाज किसी में भ्रूलौकिक गुणों को पाता है तो उसके चरणों पर केवल माथा धर कर उसे अघतारी पुद्गल समझ कर यह कहना ही पर्याप्त समझ लेता है कि 'हम तो मामूली मनुष्य हैं, हम किस प्रकार इस दामता को प्राप्त कर सकते हैं।' ऐसी बातें कहकर अपने आपको बचाने और दूर भागने की कला हमने आत्मसात की है। परन्तु इन बात को हम नहीं मानते कि अपनी शक्तिभर क्यों न हो हमें भी कर्मठ अर्थात् कार्यक्षम बनना चाहिए। केवल नठमस्तक होकर ही मैं ही मिलाने से अकर्मण्यता ने हमारे हृदय में धर कर लिया है। परिणामस्वरूप सज्जनगढ़ जैसे विद्यापीठ हम सोने लगे जहाँ से धर्म समाज एवं राष्ट्रीय छात्रों के पाठ हम पढ़ते थे। इतना ही नहीं स्वाध के कारण इन धर्मपीठों के लिए 'यायालयों की सीढ़ियों तक को घिसने में हम नहीं हिलके। अब सरकारी व्यवस्था के द्वारा इन धर्मपीठों का सुनिर्मलप होने से सदा पीठ व छात्रों को यथा-योग्य निवाहने की क्षमता प्राप्त होने से कुछ सज्जन इन धर्मपीठों का पुनरुद्धार करने में जुट गए हैं। उन्हीं में से समर्थ महाराज श्रीधर स्वामी हैं।

ठीक यही दृष्टा आद्यगुरु सकराचार्य के संकेद्वर पीठ की बनी थी। परन्तु हमारे सद्भाग्य से उस पीठ पर एरंड स्वामी के वीक्षित होकर आरब्ध होने से पीठ के पुनरुद्धार की बहुत कुछ सहायता प्रकट हुई है। आद्यगुरु सकराचार्य के समर्थ शिष्य एरंड स्वामी स्वयं एम० ए० एल-एल० बी० हैं।

हमें विदनास है कि भारतवर्ष का हिन्दू समाज ऐसे महानुभावों से क्षांति और श्रद्धा के उचित समन्वय का प्रत्यक्ष पाठ पढ़कर भारतीय जीवन के साध-साध भौतिक जीवन को भी संपन्न कर मानवी मूल्यों के स्तर को ऊपर उठाएगा।

